

## अध्याय ग्यारह

# विराट रूप

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।

यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

शब्दार्थ

अर्जुनः उवाच—अर्जुन ने कहा; मत्—अनुग्रहाय—मुझपर कृपा करने के लिए; परमम्—परम; गुह्यम्—गोपनीय; अध्यात्म—आध्यात्मिक; संज्ञितम्—नाम से जाना जाने वाला, विषयक; यत्—जो; त्वया—आपके द्वारा; उक्तम्—कहे गये; वचः—शब्द; तेन—उससे; मोहः—मोह; अयम्—यह; विगतः—हट गया; मम—मेरा ।

अर्जुन ने कहा—आपने जिन अत्यन्त गुह्य आध्यात्मिक विषयों का मुझे उपदेश दिया है, उसे सुनकर अब मेरा मोह दूर हो गया है।

तात्पर्य

इस अध्याय में कृष्ण को समस्त कारणों के कारण के रूप में दिखाया गया है। यहाँ तक कि वे उन महाविष्णु के भी कारण स्वरूप हैं, जिनसे भौतिक ब्रह्माण्डों का उद्भव होता है। कृष्ण अवतार नहीं हैं, वे समस्त अवतारों के उद्गम हैं। इसकी पूर्ण व्याख्या पिछले अध्याय में की गई है।

अब जहाँ तक अर्जुन की बात है, उसका कहना है कि उसका मोह दूर हो गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह कृष्ण को अपना मित्र स्वरूप सामान्य मनुष्य नहीं मानता, अपितु उन्हें प्रत्येक वस्तु का कारण मानता है। अर्जुन अत्यधिक प्रबुद्ध हो चुका है और उसे प्रसन्नता है कि उसे कृष्ण जैसा मित्र मिला है, किन्तु अब वह यह सोचता है कि भले ही वह कृष्ण को हर एक वस्तु का कारण मान ले, किन्तु दूसरे लोग नहीं मानेंगे। अतः

इस अध्याय में वह सबों के लिए कृष्ण की अलौकिकता स्थापित करने के लिए कृष्ण से प्रार्थना करता है कि वे अपना विराट रूप दिखलाएँ। वस्तुतः जब कोई अर्जुन की ही तरह कृष्ण के विराट रूप का दर्शन करता है, तो वह डर जाता है, किन्तु कृष्ण इतने दयालु हैं कि इस स्वरूप को दिखाने के तुरन्त बाद वे अपना मूलरूप धारण कर लेते हैं। अर्जुन कृष्ण के इस कथन को बार बार स्वीकार करता है कि वे उसके लाभ के लिए ही सब कुछ बता रहे हैं। अतः अर्जुन इसे स्वीकार करता है कि यह सब कृष्ण की कृपा से घटित हो रहा है। अब उसे पूरा विश्वास हो चुका है कि कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं और परमात्मा के रूप में प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यमान हैं।

**भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।**

**त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥**

**शब्दार्थ**

भव—उत्पत्ति; अप्ययौ—लय ( प्रलय ) ; हि—निश्चय ही; भूतानाम्—समस्त जीवों का; श्रुतौ—सुना गया है; विस्तरशः—विस्तारपूर्वक; मया—मेरे द्वारा; त्वत्तः—आपसे; कमल-पत्र-अक्ष—हे कमल नयन; माहात्म्यम्—महिमा; अपि—भी; च—तथा; आव्ययम्—अक्षय, अविनाशी।

**हे कमलनयन! मैंने आपसे प्रत्येक जीव की उत्पत्ति तथा लय के विषय में विस्तार से सुना है और आपकी अक्षय महिमा का अनुभव किया है।**

**तात्पर्य**

अर्जुन यहाँ पर प्रसन्नता के मारे कृष्ण को कमलनयन (कृष्ण के नेत्र कमल के फूल की पंखड़ियों जैसे दिखते हैं) कहकर सम्बोधित करता है क्योंकि उन्होंने किसी पिछले अध्याय में उसे विश्वास दिलाया है—*अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा*—मैं इस सम्पूर्ण भौतिक जगत की उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण हूँ। अर्जुन इसके विषय में भगवान् से विस्तारपूर्वक सुन चुका है। अर्जुन को यह भी ज्ञात है कि समस्त उत्पत्ति तथा प्रलय के कारण होने के अतिरिक्त वे इन सबसे पृथक् (असंग) रहते हैं। जैसा कि भगवान् ने नवें अध्याय में कहा है कि वे सर्वव्यापी हैं, तो भी

वे सर्वत्र स्वयं उपस्थित नहीं रहते। यही कृष्ण का अचिन्त्य ऐश्वर्य है, जिसे अर्जुन स्वीकार करता है कि उसने भलीभाँति समझ लिया है।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; यथा—जिस प्रकार; आत्थ—कहा है; त्वम्—आपने; आत्मानम्—अपने आपको; परम-ईश्वर—हे परमेश्वर; द्रष्टुम्—देखने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; ते—आपका; रूपम्—रूप; ऐश्वरम्—दैवी; पुरुष-उत्तम—हे पुरुषों में उत्तम।

हे पुरुषोत्तम, हे परमेश्वर! यद्यपि आपको मैं अपने समक्ष आपके द्वारा वर्णित आपके वास्तविक रूप में देख रहा हूँ, किन्तु मैं यह देखने का इच्छुक हूँ कि आप इस दृश्य जगत में किस प्रकार प्रविष्ट हुए हैं। मैं आपके उसी रूप का दर्शन करना चाहता हूँ।

#### तात्पर्य

भगवान् ने यह कहा कि उन्होंने अपने साक्षात् स्वरूप में ब्रह्माण्ड के भीतर प्रवेश किया है, फलतः यह दृश्यजगत सम्भव हो सका है और चल रहा है। जहाँ तक अर्जुन का सम्बन्ध है, वह कृष्ण के कथनों से प्रोत्साहित है, किन्तु भविष्य में उन लोगों को विश्वास दिलाने के लिए, जो कृष्ण को सामान्य पुरुष सोच सकते हैं, अर्जुन चाहता है कि वह भगवान् को उनके विराट रूप में देखे जिससे वे ब्रह्माण्ड के भीतर से काम करते हैं, यद्यपि वे इससे पृथक् हैं। अर्जुन द्वारा भगवान् के लिए पुरुषोत्तम सम्बोधन भी महत्त्वपूर्ण है। चूँकि वे भगवान् हैं, इसलिए वे स्वयं अर्जुन के भी भीतर उपस्थित हैं, अतः वे अर्जुन की इच्छा को जानते हैं। वे यह समझते हैं कि अर्जुन को उनके विराट रूप का दर्शन करने की कोई लालसा नहीं है, क्योंकि वह उनको साक्षात् देखकर पूर्णतया संतुष्ट है। किन्तु भगवान् यह भी जानते हैं कि अर्जुन अन्यो को विश्वास दिलाने के लिए ही विराट रूप का दर्शन करना चाहता है। अर्जुन को इसकी पुष्टि के लिए कोई व्यक्तिगत

इच्छा न थी। कृष्ण यह भी जानते हैं कि अर्जुन विराट रूप का दर्शन एक आदर्श स्थापित करने के लिए करना चाहता है, क्योंकि भविष्य में ऐसे अनेक धूर्त होंगे जो अपने आपको ईश्वर का अवतार बताएँगे। अतः लोगों को सावधान रहना होगा। जो कोई अपने को कृष्ण कहेगा, उसे अपने दावे की पुष्टि के लिए विराट रूप दिखाने के लिए सन्नद्ध रहना होगा।

**मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।**

**योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥**

**शब्दार्थ**

मन्यसे—तुम सोचते हो; यदि—यदि; तत्—वह; शक्यम्—समर्थ; मया—मेरे द्वारा; द्रष्टुम्—देखे जाने के लिए; इति—इस प्रकार; प्रभो—हे स्वामी; योग-ईश्वर—हे योगेश्वर; ततः—तब; मे—मुझे; त्वम्—आप; दर्शय—दिखलाइये; आत्मानम्—अपने स्वरूप को; अव्ययम्—शाश्वत।

**हे प्रभु! हे योगेश्वर! यदि आप सोचते हैं कि मैं आपके विश्वरूप को देखने में समर्थ हो सकता हूँ, तो कृपा करके मुझे अपना असीम विश्वरूप दिखलाइये।**

**तात्पर्य**

ऐसा कहा जाता है कि भौतिक इन्द्रियों द्वारा न तो परमेश्वर कृष्ण को कोई देख सकता है, न सुन सकता है और न अनुभव कर सकता है। किन्तु यदि कोई प्रारम्भ से भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहे, तो वह भगवान् का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकता है। प्रत्येक जीव आध्यात्मिक स्फुलिंग मात्र है, अतः परमेश्वर को जान पाना या देख पाना सम्भव नहीं है। भक्तरूप में अर्जुन को अपनी चिन्तनशक्ति पर भरोसा नहीं है, वह जीवात्मा होने के कारण अपनी सीमाओं को और कृष्ण की अकल्पनीय स्थिति को स्वीकार करता है। अर्जुन समझ चुका था कि एक क्षुद्रजीव के लिए असीम अनन्त को समझ पाना सम्भव नहीं है। यदि अनन्त स्वयं प्रकट हो जाए, तो अनन्त की कृपा से ही उसकी प्रकृति को समझा जा सकता है। यहाँ पर *योगेश्वर* शब्द भी अत्यन्त सार्थक है, क्योंकि भगवान् के पास अचिन्त्य शक्ति है। यदि वे चाहें तो असीम होकर भी अपने आपको प्रकट कर सकते हैं। अतः अर्जुन कृष्ण की अकल्पनीय

कृपा की याचना करता है। वह कृष्ण को आदेश नहीं देता। जब तक कोई उनकी शरण में नहीं जाता और भक्ति नहीं करता, कृष्ण अपने को प्रकट करने के लिए बाध्य नहीं हैं। अतः जिन्हें अपनी चिन्तनशक्ति (मनोधर्म) का भरोसा है, वे कृष्ण का दर्शन नहीं कर पाते।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; पश्य—देखो; मे—मेरा; पार्थ—हे पृथापुत्र;  
रूपाणि—रूप; शतशः—सैकड़ों; अथ—भी; सहस्रशः—हजारों; नाना-विधानि—  
नाना रूप वाले; दिव्यानि—दिव्य; नाना—नाना प्रकार के; वर्णा—रंग; आकृतीनि—  
रूप; च—भी।

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन, हे पार्थ! अब तुम मेरे ऐश्वर्य को, सैकड़ों-हजारों प्रकार के दैवी तथा विविध रंगों वाले रूपों को देखो।

तात्पर्य

अर्जुन कृष्ण के विश्वरूप का दर्शनाभिलाषी था, जो दिव्य होकर भी दृश्य जगत् के लाभार्थ प्रकट होता है। फलतः वह प्रकृति के अस्थाई काल द्वारा प्रभावित है। जिस प्रकार प्रकृति (माया) प्रकट-अप्रकट है, उसी तरह कृष्ण का यह विश्वरूप भी प्रकट तथा अप्रकट होता रहता है। यह कृष्ण के अन्य रूपों की भाँति वैकुण्ठ में नित्य नहीं रहता। जहाँ तक भक्त की बात है, वह विश्वरूप देखने के लिए तनिक भी इच्छुक नहीं रहता, लेकिन चूँकि अर्जुन कृष्ण को इस रूप में देखना चाहता था, अतः वे यह रूप प्रकट करते हैं। सामान्य व्यक्ति इस रूप को नहीं देख सकता। श्रीकृष्ण द्वारा शक्ति प्रदान किये जाने पर ही इसके दर्शन हो सकते हैं।

पश्यादित्यान्वसून्द्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।

बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

पश्य—देखो; आदित्यान्—अदिति के बारहों पुत्रों को; वसून्—आठों वसुओं को; रुद्रान्—रुद्र के ग्यारह रूपों को; अश्विनौ—दो अश्विनी कुमारों को; मरुतः—उच्चासों मरुतों को; तथा—भी; बहूनि—अनेक; अदृष्ट—न देखे हुए; पूर्वाणि—पहले, इसके पूर्व; पश्य—देखो; आश्चर्याणि—समस्त आश्चर्यों को; भारत—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ।

हे भारत! लो, तुम आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों तथा अन्य देवताओं के विभिन्न रूपों को यहाँ देखो। तुम ऐसे अनेक आश्चर्यमय रूपों को देखो, जिन्हें पहले किसी ने न तो कभी देखा है, न सुना है।

तात्पर्य

यद्यपि अर्जुन कृष्ण का अन्तरंग सखा तथा अत्यन्त विद्वान् था, तो भी वह उनके विषय में सब कुछ नहीं जानता था। यहाँ पर यह कहा गया है कि इन समस्त रूपों को न तो मनुष्यों ने इसके पूर्व देखा है, न सुना है। अब कृष्ण इन आश्चर्यमय रूपों को प्रकट कर रहे हैं।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।

मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

इह—इसमें; एक-स्थम्—एक स्थान में; जगत्—ब्रह्माण्ड; कृत्स्नम्—पूर्णतया; पश्य—देखो; अद्य—तुरन्त; स—सहित; चर—जंगम; अचरम्—तथा अचर, जड़; मम—मेरे; देहे—शरीर में; गुडाकेश—हे अर्जुन; यत्—जो; च—भी; अन्यत्—अन्य, और; द्रष्टुम्—देखना; इच्छसि—चाहते हो।

हे अर्जुन! तुम जो भी देखना चाहो, उसे तत्क्षण मेरे इस शरीर में देखो। तुम इस समय तथा भविष्य में भी जो भी देखना चाहते हो, उसको यह विश्वरूप दिखाने वाला है। यहाँ एक ही स्थान पर चर-अचर सब कुछ है।

तात्पर्य

कोई भी व्यक्ति एक स्थान में बैठे-बैठे सारा विश्व नहीं देख सकता। यहाँ तक कि बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी यह नहीं देख सकता कि ब्रह्माण्ड के अन्य भागों में क्या हो रहा है। किन्तु अर्जुन जैसा भक्त यह देख सकता है कि सारी वस्तुएँ जगत् में कहाँ-कहाँ स्थित हैं। कृष्ण उसे शक्ति प्रदान

करते हैं, जिससे वह भूत, वर्तमान तथा भविष्य, जो कुछ देखना चाहे, देख सकता है। इस तरह अर्जुन कृष्ण के अनुग्रह से सारी वस्तुएँ देखने में समर्थ है।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; तु—लेकिन; माम्—मुझको; शक्यसे—तुम समर्थ होगे; द्रष्टुम्—देखने में; अनेन—इन; एव—निश्चय ही; स्व-चक्षुषा—अपनी आँखों से; दिव्यम्—दिव्य; ददामि—देता हूँ; ते—तुमको; चक्षुः—आँखें; पश्य—देखो; मे—मेरी; योगम् ऐश्वर्यम्—अचिन्त्य योगशक्ति।

किन्तु तुम मुझे अपनी इन आँखों से नहीं देख सकते। अतः मैं तुम्हें दिव्य आँखें दे रहा हूँ। अब मेरे योग ऐश्वर्य को देखो।

तात्पर्य

शुद्धभक्त कृष्ण को, उनके दोभुजी रूप के अतिरिक्त, अन्य किसी भी रूप में देखने की इच्छा नहीं करता। भक्त को भगवत्कृपा से ही उनके विराट रूप का दर्शन दिव्य चक्षुओं (नेत्रों) से करना होता है, न कि मन से। कृष्ण के विराट रूप का दर्शन करने के लिए अर्जुन से कहा जाता है कि वह अपने मन को नहीं, अपितु दृष्टि को बदले। कृष्ण का यह विराट रूप कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह बाद के श्लोकों से पता चल जाएगा। फिर भी, चूँकि अर्जुन इसका दर्शन करना चाहता था, अतः भगवान् ने उसे इस विराट रूप को देखने के लिए विशिष्ट दृष्टि प्रदान की।

जो भक्त कृष्ण के साथ दिव्य सम्बन्ध से बँधे हैं, वे उनके ऐश्वर्यों के ईश्वरविहीन प्रदर्शनों से नहीं, अपितु उनके प्रेममय स्वरूपों से आकृष्ट होते हैं। कृष्ण के बालसंगी, कृष्ण के सखा तथा कृष्ण के माता-पिता यह कभी नहीं चाहते कि कृष्ण उन्हें अपने ऐश्वर्यों का प्रदर्शन कराएँ। वे तो शुद्ध प्रेम में इतने निमग्न रहते हैं कि उन्हें पता ही नहीं चलता कि कृष्ण भगवान् हैं। वे प्रेम के आदान-प्रदान में इतने विभोर रहते हैं कि वे भूल जाते हैं कि श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि कृष्ण के साथ

खेलने वाले बालक अत्यन्त पवित्र आत्माएँ हैं और कृष्ण के साथ इस प्रकार खेलने का अवसर उन्हें अनेकानेक जन्मों के बाद प्राप्त हुआ है। ऐसे बालक यह नहीं जानते कि कृष्ण भगवान् हैं। वे उन्हें अपना निजी मित्र मानते हैं। अतः शुकदेव गोस्वामी यह श्लोक सुनाते हैं—

इत्थं सतां ब्रह्म-सुखानुभूत्या  
दास्यं गतानां परदैवतेन ।  
मायाश्रितानां नरदारकेण  
साकं विजहुः कृत-पुण्य-पुञ्जाः ॥

“यह वह परमपुरुष है, जिसे ऋषिगण निर्विशेष ब्रह्म करके मानते हैं, भक्तगण भगवान् मानते हैं और सामान्यजन प्रकृति से उत्पन्न हुआ मानते हैं। ये बालक, जिन्होंने अपने पूर्वजन्मों में अनेक पुण्य किये हैं, अब उसी भगवान् के साथ खेल रहे हैं।” ( श्रीमद्भागवत १०.१२.११ ) ।

तथ्य तो यह है कि भक्त विश्वरूप को देखने का इच्छुक नहीं रहता, किन्तु अर्जुन कृष्ण के कथनों की पुष्टि करने के लिए विश्वरूप का दर्शन करना चाहता था, जिससे भविष्य में लोग यह समझ सकें कि कृष्ण न केवल सैद्धान्तिक या दार्शनिक रूप से अर्जुन के समक्ष प्रकट हुए, अपितु साक्षात् रूप में प्रकट हुए थे। अर्जुन को इसकी पुष्टि करनी थी, क्योंकि अर्जुन से ही परम्परा-पद्धति प्रारम्भ होती है। जो लोग वास्तव में भगवान् को समझना चाहते हैं और अर्जुन के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहते हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिए कि कृष्ण न केवल सैद्धान्तिक रूप में, अपितु वास्तव में अर्जुन के समक्ष परमेश्वर के रूप में प्रकट हुए।

भगवान् ने अर्जुन को अपना विश्वरूप देखने के लिए आवश्यक शक्ति प्रदान की, क्योंकि वे जानते थे कि अर्जुन इस रूप को देखने के लिए विशेष इच्छुक न था, जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।  
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ



सञ्जयः उवाच—संजय ने कहा; एवम्—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; ततः—  
तत्पश्चात्; राजन्—हे राजा; महा-योग-ईश्वरः—परम शक्तिशाली योगी; हरिः—भगवान्  
कृष्ण ने; दर्शयाम् आस—दिखलाया; पार्थाय—अर्जुन को; परमम्—दिव्य; रूपम्  
ऐश्वर्यम्—विश्वरूप।

संजय ने कहा—हे राजा! इस प्रकार कहकर महायोगेश्वर  
भगवान् ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखलाया।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।

अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

अनेक—कई; वक्त्र—मुख; नयनम्—नेत्र; अनेक—अनेक; अद्भुत—विचित्र;  
दर्शनम्—दृश्य; अनेक—अनेक; दिव्य—दिव्य, अलौकिक; आभरणम्—आभूषण;  
दिव्य—दैवी; अनेक—विविध; उद्यत—उठाये हुए; आयुधम्—हथियार; दिव्य—  
दिव्य; माल्य—मालाएँ; अम्बर—वस्त्र; धरम्—धारण किये; दिव्य—दिव्य; गन्ध—  
सुगन्धियाँ; अनुलेपनम्—लगी थीं; सर्व—समस्त; आश्चर्य-मयम्—आश्चर्यपूर्ण;  
देवम्—प्रकाशयुक्त; अनन्तम्—असीम; विश्वतः-मुखम्—सर्वव्यापी।

अर्जुन ने उस विश्वरूप में असंख्य मुख, असंख्य नेत्र तथा  
असंख्य आश्चर्यमय दृश्य देखे। यह रूप अनेक दैवी आभूषणों  
से अलंकृत था और अनेक दैवी हथियार उठाये हुए था। यह  
दैवी मालाएँ तथा वस्त्र धारण किये था और उस पर अनेक  
दिव्य सुगन्धियाँ लगी थीं। सब कुछ आश्चर्यमय, तेजमय,  
असीम तथा सर्वत्र व्याप्त था।

#### तात्पर्य

इन दोनों श्लोकों में अनेक शब्द का बारम्बार प्रयोग हुआ है, जो यह  
सूचित करता है कि अर्जुन जिस रूप को देख रहा था उसके हाथों, मुखों,  
पाँवों की कोई सीमा न थी। ये रूप सारे ब्रह्माण्ड में फैले हुए थे, किन्तु  
भगवत्कृपा से अर्जुन उन्हें एक स्थान पर बैठे-बैठे देख रहा था। यह सब  
कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के कारण था।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

दिवि—आकाश में; सूर्य—सूर्य का; सहस्रस्य—हजारों; भवेत्—थे; युगपत्—  
एकसाथ; उत्थिता—उपस्थित; यदि—यदि; भाः—प्रकाश; सदृशी—के समान; सा—  
वह; स्यात्—हो; भासः—तेज; तस्य—उस; महा-आत्मनः—परम स्वामी का ।

यदि आकाश में हजारों सूर्य एकसाथ उदय हों, तो उनका प्रकाश शायद परमपुरुष के इस विश्वरूप के तेज की समता कर सके ।

#### तात्पर्य

अर्जुन ने जो कुछ देखा वह अकथ्य था, तो भी संजय धृतराष्ट्र को उस महान दर्शन का मानसिक चित्र उपस्थित करने का प्रयत्न कर रहा है । न तो संजय वहाँ था, न धृतराष्ट्र, किन्तु व्यासदेव के अनुग्रह से संजय सारी घटनाओं को देख सकता है । अतएव इस स्थिति की तुलना वह एक काल्पनिक घटना (हजारों सूर्यों) से कर रहा है, जिससे इसे समझा जा सके ।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।

अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; एक-स्थम्—एकत्र, एक स्थान में; जगत्—ब्रह्माण्ड; कृत्स्नम्—सम्पूर्ण;  
प्रविभक्तम्—विभाजित; अनेकधा—अनेक में; अपश्यत्—देखा; देव-देवस्य—  
भगवान् के; शरीरे—विश्वरूप में; पाण्डवः—अर्जुन ने; तदा—तब ।

उस समय अर्जुन भगवान् के विश्वरूप में एक ही स्थान पर स्थित हजारों भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के अनन्त अंशों को देख सका ।

#### तात्पर्य

तत्र (वहाँ) शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इससे सूचित होता है कि जब अर्जुन ने विश्वरूप देखा, उस समय अर्जुन तथा कृष्ण दोनों ही रथ पर

बैठे थे। युद्धभूमि के अन्य लोग इस रूप को नहीं देख सके, क्योंकि कृष्ण ने केवल अर्जुन को दृष्टि प्रदान की थी। वह कृष्ण के शरीर में हजारों लोक देख सका। जैसा कि वैदिक शास्त्रों से पता चलता है कि ब्रह्माण्ड अनेक हैं और लोक भी अनेक हैं। इनमें से कुछ मिट्टी के बने हैं, कुछ सोने के, कुछ रत्नों के, कुछ बहुत बड़े हैं, तो कुछ बहुत बड़े नहीं हैं। अपने रथ पर बैठकर अर्जुन इन सबों को देख सकता था। किन्तु कोई यह नहीं जान पाया कि अर्जुन तथा कृष्ण के बीच क्या चल रहा था।

**ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।**

**प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥**

**शब्दार्थ**

ततः—तत्पश्चात्; सः—वह; विस्मय-आविष्टः—आश्चर्यचकित होकर; हृष्ट-रोमा—हर्ष से रोमांचित; धनञ्जयः—अर्जुन; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—शिर के बल; देवम्—भगवान् को; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; अभाषत—कहने लगा।

तब मोहग्रस्त एवं आश्चर्यचकित रोमांचित हुए अर्जुन ने प्रणाम करने के लिए मस्तक झुकाया और वह हाथ जोड़कर भगवान् से प्रार्थना करने लगा।

**तात्पर्य**

एक बार दिव्य दर्शन हुआ नहीं कि कृष्ण तथा अर्जुन के पारस्परिक सम्बन्ध तुरन्त बदल गये। अभी तक कृष्ण तथा अर्जुन में मैत्री सम्बन्ध था, किन्तु दर्शन होते ही अर्जुन अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम कर रहा है और हाथ जोड़कर कृष्ण से प्रार्थना कर रहा है। वह उनके विश्वरूप की प्रशंसा कर रहा है। इस प्रकार अर्जुन का सम्बन्ध मित्रता का न रहकर आश्चर्य का बन जाता है। बड़े-बड़े भक्त कृष्ण को समस्त सम्बन्धों का आगार मानते हैं। शास्त्रों में १२ प्रकार के सम्बन्धों का उल्लेख है और ये सब कृष्ण में निहित हैं। यह कहा जाता है कि वे दो जीवों के बीच, देवताओं के बीच या भगवान् तथा भक्त के बीच के पारस्परिक आदान-प्रदान होने वाले सम्बन्धों के सागर हैं।

यहाँ पर अर्जुन आश्चर्य-सम्बन्ध से प्रेरित है और उसीमें वह अत्यन्त गम्भीर तथा शान्त होते हुए भी अत्यन्त आह्लादित हो उठा। उसके रोम खड़े हो गये और वह हाथ जोड़कर भगवान् की प्रार्थना करने लगा। निस्सन्देह वह भयभीत नहीं था। वह भगवान् के आश्चर्यों से अभिभूत था। इस समय तो उसके समक्ष आश्चर्य था और उसकी प्रेमपूर्ण मित्रता आश्चर्य से अभिभूत थी। अतः उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार हुई।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे  
सर्वास्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।  
ब्रह्माणामीशं कमलासनस्थ-  
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अर्जुनः उवाच—अर्जुन ने कहा; पश्यामि—देखता हूँ; देवान्—समस्त देवताओं को; तव—आपके; देव—हे प्रभु; देहे—शरीर में; सर्वान्—समस्त; तथा—भी; भूत—जीव; विशेष-सङ्घान्—विशेष रूप से एकत्रित; ब्रह्माणम्—ब्रह्मा को; ईशम्—शिव को; कमल-आसन-स्थम्—कमल के ऊपर आसीन; ऋषीन्—ऋषियों को; च—भी; सर्वान्—समस्त; उरगान्—सर्पों को; च—भी; दिव्यान्—दिव्य।

अर्जुन ने कहा—हे भगवान् कृष्ण! मैं आपके शरीर में सारे देवताओं तथा अन्य विविध जीवों को एकत्र देख रहा हूँ। मैं कमल पर आसीन ब्रह्मा, शिवजी तथा समस्त ऋषियों एवं दिव्य सर्पों को देख रहा हूँ।

तात्पर्य

अर्जुन ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु देखता है, अतः वह ब्रह्माण्ड के प्रथम प्राणी ब्रह्मा को तथा उस दिव्य सर्प को, जिस पर गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड के अधोतल में शयन करते हैं, देखता है। इस शेष-शय्या के नाग को वासुकि भी कहते हैं। अन्य सर्पों को भी वासुकि कहा जाता है। अर्जुन गर्भोदकशायी विष्णु से लेकर कमललोक स्थित ब्रह्माण्ड के शीर्षस्थ भाग को जहाँ ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा निवास करते हैं, देख सकता है। इसका अर्थ यह है कि अर्जुन आदि से अन्त तक की सारी वस्तुएँ

अपने रथ में एक ही स्थान पर बैठे-बैठे देख सकता था। यह सब भगवान् कृष्ण की कृपा से ही सम्भव हो सका।

⑨

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं

पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं

पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अनेक—कई; बाहु—भुजाएँ; उदर—पेट; वक्त्र—मुख; नेत्रम्—आँखें; पश्यामि—देख रहा हूँ; त्वाम्—आपको; सर्वतः—चारों ओर; अनन्त-रूपम्—असंख्य रूप; न अन्तम्—अन्तहीन, कोई अन्त नहीं है; न मध्यम्—मध्य रहित; न पुनः—न फिर; तव—आपका; आदिम्—प्रारम्भ; पश्यामि—देखता हूँ; विश्व-ईश्वर—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; विश्व-रूप—ब्रह्माण्ड के रूप में।

हे विश्वेश्वर, हे विश्वरूप! मैं आपके शरीर में अनेकानेक हाथ, पेट, मुँह तथा आँखें देख रहा हूँ, जो सर्वत्र फैले हैं और जिनका अन्त नहीं है। आपमें न अन्त दीखता है, न मध्य और न आदि।

तात्पर्य

कृष्ण भगवान् हैं और असीम हैं, अतः उनके माध्यम से सब कुछ देखा जा सकता था।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च

तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-

द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

किरीटिनम्—मुकुट युक्त; गदिनम्—गदा धारण किये; चक्रिणम्—चक्र समेत; च—तथा; तेजः-राशिम्—तेज; सर्वतः—चारों ओर; दीप्ति-मन्तम्—प्रकाश युक्त; पश्यामि—देखता हूँ; त्वाम्—आपको; दुर्निरीक्ष्यम्—देखने में कठिन; समन्तात्—सर्वत्र; दीप्त-अनल—प्रज्वलित अग्नि; अर्क—सूर्य की; द्युतिम्—धूप; अप्रमेयम्—अनन्त।

आपके रूप को उसके चकाचौंध तेज के कारण देख पाना कठिन है, क्योंकि वह प्रज्वलित अग्नि की भाँति अथवा सूर्य के अपार प्रकाश की भाँति चारों ओर फैल रहा है। तो भी मैं इस तेजोमय रूप को सर्वत्र देख रहा हूँ, जो अनेक मुकुटों, गदाओं तथा चक्रों से विभूषित है।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं

त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता

सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; अक्षरम्—अच्युत; परमम्—परम; वेदितव्यम्—जानने योग्य; त्वम्—आप; अस्य—इस; विश्वस्य—विश्व के; परम्—परम; निधानम्—आधार; त्वम्—आप; अव्ययः—अविनाशी; शाश्वत-धर्म-गोप्ता—शाश्वत धर्म के पालक; सनातनः—शाश्वत; त्वम्—आप; पुरुषः—परमपुरुष; मतः मे—मेरा मत है।

आप परम आद्य ज्ञेय वस्तु हैं। आप इस ब्रह्माण्ड के परम आधार ( आश्रय ) हैं। आप अव्यय तथा पुराण पुरुष हैं। आप सनातन धर्म के पालक भगवान् हैं। यही मेरा मत है।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-

मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं

स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अनादि—आदिरहित; मध्य—मध्य; अन्तम्—या अन्त; अनन्त—असीम; वीर्यम्—महिमा; अनन्त—असंख्य; बाहुम्—भुजाएँ; शशि—चन्द्रमा; सूर्य—तथा सूर्य; नेत्रम्—आँखें; पश्यामि—देखता हूँ; त्वाम्—आपको; दीप्त—प्रज्वलित; हुताश-वक्त्रम्—आपके मुख से निकलती अग्नि को; स्व-तेजसा—अपने तेज से; विश्वम्—विश्व को; इदम्—इस; तपन्तम्—तपाते हुए।

आप आदि, मध्य तथा अन्त से रहित हैं। आपका यश अनन्त है। आपकी असंख्य भुजाएँ हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा आपकी आँखें हैं। मैं आपके मुख से प्रज्वलित अग्नि निकलते और आपके तेज से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को जलते हुए देख रहा हूँ।

तात्पर्य

भगवान् के षड्पेश्वरों की कोई सीमा नहीं है। यहाँ पर तथा अन्यत्र भी पुनरुक्ति पाई जाती है, किन्तु शास्त्रों के अनुसार कृष्ण की महिमा की पुनरुक्ति कोई साहित्यिक दोष नहीं है। कहा जाता है कि मोहग्रस्त होने या परम आह्लाद के समय या आश्चर्य होने पर कथनों की पुनरुक्ति हुआ करती है। यह कोई दोष नहीं है।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि

व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।

दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं

लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

द्यौ—बाह्य आकाश से लेकर; आ-पृथिव्योः—पृथ्वी तक; इदम्—इस; अन्तरम्—मध्य में; हि—निश्चय ही; व्याप्तम्—व्याप्त; त्वया—आपके द्वारा; एकेन—अकेला; दिशः—दिशाएँ; च—तथा; सर्वाः—सभी; दृष्ट्वा—देखकर; अद्भुतम्—अद्भुत; रूपम्—रूप को; उग्रम्—भयानक; तव—आपके; इदम्—इस; लोक—लोक; त्रयम्—तीन; प्रव्यथितम्—भयभीत, विचलित; महा-आत्मन्—हे महापुरुष।

यद्यपि आप एक हैं, किन्तु आप आकाश तथा सारे लोकों एवं उनके बीच के समस्त अवकाश में व्याप्त हैं। हे महापुरुष! आपके इस अद्भुत तथा भयानक रूप को देखकर सारे लोक भयभीत हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में द्याव्-आ-पृथिव्योः (धरती तथा आकाश के बीच का स्थान) तथा लोकत्रयम् (तीनों संसार) महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, क्योंकि ऐसा

लगता है कि न केवल अर्जुन ने इस विश्वरूप को देखा, बल्कि अन्य लोकों के वासियों ने भी इसे देखा। अर्जुन द्वारा विश्वरूप का दर्शन स्वप्न न था। भगवान् ने जिन जिनको दिव्य दृष्टि प्रदान की, उन्होंने युद्धक्षेत्र में उस विश्वरूप को देखा।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति  
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।  
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः  
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

अमी—वे सब; हि—निश्चय ही; त्वाम्—आपको; सुर-सङ्घः—देव समूह; विशन्ति—प्रवेश कर रहे हैं; केचित्—उनमें से कुछ; भीताः—भयवश; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; गृणन्ति—स्तुति कर रहे हैं; स्वस्ति—कल्याण हो; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; महा-ऋषि—महर्षिगण; सिद्ध-सङ्घः—सिद्ध लोग; स्तुवन्ति—स्तुति कर रहे हैं; त्वाम्—आपकी; स्तुतिभिः—प्रार्थनाओं से; पुष्कलाभिः—वैदिक स्तोत्रों से।

देवों का सारा समूह आपकी शरण ले रहा है और आपमें प्रवेश कर रहा है। उनमें से कुछ अत्यन्त भयभीत होकर हाथ जोड़े आपकी प्रार्थना कर रहे हैं। महर्षियों तथा सिद्धों के समूह “कल्याण हो” कहकर वैदिक स्तोत्रों का पाठ करते हुए आपकी स्तुति कर रहे हैं।

#### तात्पर्य

समस्त लोकों के देवता विश्वरूप की भयानकता तथा प्रदीप्त तेज से इतने भयभीत थे कि वे रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या  
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।  
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा  
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ



रुद्र—शिव का रूप; आदित्याः—आदित्यगण; वसवः—सारे वसु; ये—जो; च—  
तथा; साध्याः—साध्य; विश्वे—विश्वेदेवता; अश्विनौ—अश्विनीकुमार; मरुतः—  
मरुद्गण; च—तथा; उष्म-पाः—पितर; च—तथा; गन्धर्व—गन्धर्व; यक्ष—यक्ष;  
असुर—असुर; सिद्ध—तथा सिद्ध देवताओं के; सङ्घाः—समूह; वीक्षन्ते—देख रहे हैं;  
त्वाम्—आपको; विस्मिताः—आश्चर्यचकित होकर; च—भी; एव—निश्चय ही;  
सर्वे—सब ।

शिव के विविध रूप, आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वेदेव,  
दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितृगण, गन्धर्व, यक्ष, असुर  
तथा सिद्धदेव सभी आपको आश्चर्यपूर्वक देख रहे हैं ।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं

महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं

दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

रूपम्—रूप; महत्—विशाल; ते—आपका; बहु—अनेक; वक्त्र—मुख; नेत्रम्—  
तथा आँखें; महा-बाहो—हे बलिष्ठ भुजाओं वाले; बहु—अनेक; बाहु—भुजाएँ;  
ऊरु—जाँघें; पादम्—तथा पाँव; बहु-उदरम्—अनेक पेट; बहु-दंष्ट्रा—अनेक दाँत;  
करालम्—भयानक; दृष्ट्वा—देखकर; लोकाः—सारे लोक; प्रव्यथिताः—विचलित;  
तथा—उसी प्रकार; अहम्—मैं ।

हे महाबाहु! आपके इस अनेक मुख, नेत्र, बाहु, जंघा,  
पाँव, पेट तथा भयानक दाँतों वाले विराट रूप को देखकर  
देवतागण सहित सभी लोक अत्यन्त विचलित हैं और उन्हीं  
की तरह मैं भी हूँ ।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं

व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा

धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

नभः—स्पृशम्—आकाश छूता हुआ; दीप्तम्—ज्योतिर्मय; अनेक—कई; वर्णम्—रंग; व्याक्त—खुले हुए; आननम्—मुख; दीप्त—प्रदीप्त; विशाल—बड़ी-बड़ी; नेत्रम्—आँखें; दृष्ट्वा—देखकर; हि—निश्चय ही; त्वाम्—आपको; प्रव्यथित—विचलित, भयभीत; अन्तः—भीतर; आत्मा—आत्मा; धृतिम्—दृढ़ता या धैर्य को; न—नहीं; विन्दामि—प्राप्त हूँ; शमम्—मानसिक शान्ति को; च—भी; विष्णो—हे विष्णु।

हे सर्वव्यापी विष्णु! नाना ज्योतिर्मय रंगों से युक्त आपको आकाश का स्पर्श करते, मुख फैलाये तथा बड़ी-बड़ी चमकती आँखें निकाले देखकर भय से मेरा मन विचलित है। मैं न तो धैर्य धारण कर पा रहा हूँ, न मानसिक संतुलन ही पा रहा हूँ।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि

दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।

दिशो न जाने न लभे च शर्म

प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

दंष्ट्रा—दाँत; करालानि—विकराल; च—भी; ते—आपके; मुखानि—मुखों को; दृष्ट्वा—देखकर; एव—इस प्रकार; काल-अनल—प्रलय की; सन्निभानि—मानों; दिशः—दिशाएँ; न—नहीं; जाने—जानता हूँ; न—नहीं; लभे—प्राप्त करता हूँ; च—तथा; शर्म—आनन्द; प्रसीद—प्रसन्न हों; देव-ईश—हे देवताओं के स्वामी; जगत्-निवास—हे समस्त जगत्ओं के आश्रय।

हे देवेश! हे जगन्निवास! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं इस प्रकार से आपके प्रलयाग्नि स्वरूप मुखों को तथा विकराल दाँतों को देखकर अपना सन्तुलन नहीं रख पा रहा। मैं सब ओर से मोहग्रस्त हो रहा हूँ।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः  
 सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।  
 भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ  
 सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥  
 वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति  
 दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।  
 केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु  
 सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

अमी—ये; च—भी; त्वाम्—आपको; धृतराष्ट्रस्य—धृतराष्ट्र के; पुत्राः—पुत्र; सर्वे—सभी; सह—सहित; एव—निस्सन्देह; अवनि-पाल—वीर राजाओं के; सङ्घैः—समूह; भीष्मः—भीष्मदेव; द्रोणः—द्रोणाचार्य; सूत-पुत्रः—कर्ण; तथा—भी; असौ—यह; सह—साथ; अस्मदीयैः—हमारे; अपि—भी; योध-मुख्यैः—मुख्य योद्धा; वक्त्राणि—मुखों में; ते—आपके; त्वरमाणाः—तेजी से; विशन्ति—प्रवेश कर रहे हैं; दंष्ट्रा—दाँत; करालानि—विकराल; भयानकानि—भयानक; केचित्—उनमें से कुछ; विलग्नाः—लगे रहकर; दशन-अन्तरेषु—दाँतों के बीच में; सन्दृश्यन्ते—दिख रहे हैं; चूर्णितैः—चूर्ण हुए; उत्तम-अङ्गैः—शिरों से।

धृतराष्ट्र के सारे पुत्र अपने समस्त सहायक राजाओं सहित तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण एवं हमारे प्रमुख योद्धा भी आपके विकराल मुख में प्रवेश कर रहे हैं। उनमें से कुछ के शिरों को तो मैं आपके दाँतों के बीच चूर्णित हुआ देख रहा हूँ।

#### तात्पर्य

एक पिछले श्लोक में भगवान् ने अर्जुन को वचन दिया था कि यदि वह कुछ देखने का इच्छुक हो तो वे उसे दिखा सकते हैं। अब अर्जुन देख रहा है कि विपक्ष के नेता (भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा धृतराष्ट्र के सारे पुत्र) तथा उनके सैनिक और अर्जुन के भी सैनिक विनष्ट हो रहे हैं। यह इसका संकेत है कि कुरुक्षेत्र में एकत्र समस्त व्यक्तियों की मृत्यु के बाद अर्जुन विजयी होगा। यहाँ यह भी उल्लेख है कि भीष्म भी, जिन्हें अजेय माना जाता है, ध्वस्त हो जायेंगे। वही गति कर्ण की होनी है। न केवल विपक्ष

के भीष्म जैसे महान योद्धा विनष्ट हो जाएँगे, अपितु अर्जुन के पक्ष वाले कुछ महान योद्धा भी नष्ट होंगे।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः

समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।

तथा तवामी नरलोकवीरा

विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; नदीनाम्—नदियों की; बहवः—अनेक; अम्बु-वेगाः—जल की तरंगें; समुद्रम्—समुद्र; एव—निश्चय ही; अभिमुखाः—की ओर; द्रवन्ति—दौती हैं; तथा—उसी प्रकार से; तव—आपके; अमी—ये सब; नर-लोक-वीराः—मानव समाज के राजा; विशन्ति—प्रवेश कर रहे हैं; वक्त्राणि—मुखों में; अभिविज्वलन्ति—प्रज्वलित हो रहे हैं।

जिस प्रकार नदियों की अनेक तरंगें समुद्र में प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार ये समस्त महान योद्धा भी आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा

विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथैव नाशाय विशन्ति लोका-

स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; प्रदीप्तम्—जलती हुई; ज्वलनम्—अग्नि में; पतङ्गाः—पतंगे, कीड़े मकोड़े; विशन्ति—प्रवेश करते हैं; नाशाय—विनाश के लिए; समृद्ध-पूर्ण; वेगाः—वेग; तथा एव—उसी प्रकार से; नाशाय—विनाश के लिए; विशन्ति—प्रवेश कर रहे हैं; लोकाः—सारे लोग; तव—आपके; अपि—भी; वक्त्राणि—मुखों में; समृद्ध-वेगाः—पूरे वेग से।

मैं समस्त लोगों को पूर्ण वेग से आपके मुख में उसी प्रकार प्रविष्ट होते देख रहा हूँ, जिस प्रकार पतंगे अपने विनाश के लिए प्रज्वलित अग्नि में कूद पड़ते हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-  
 ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।  
 तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं  
 भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

लेलिह्यसे—चाट रहे हैं; ग्रसमानः—निगलते हुए; समन्तात्—समस्त दिशाओं से;  
 लोकान्—लोगों को; समग्रान्—सभी; वदनैः—मुखों से; ज्वलद्भिः—जलते हुए;  
 तेजोभिः—तेज से; आपूर्य—आच्छादित करके; जगत्—ब्रह्माण्ड को; समग्रम्—  
 समस्त; भासः—किरणों; तव—आपकी; उग्राः—भयंकर; प्रतपन्ति—झुलसा रही हैं;  
 विष्णो—हे विश्वव्यापी भगवान् ।

हे विष्णु! मैं देखता हूँ कि आप अपने प्रज्वलित मुखों से सभी दिशाओं के लोगों को निगले जा रहे हैं। आप सारे ब्रह्माण्ड को अपने तेज से आपूरित करके अपनी विकराल झुलसाती किरणों सहित प्रकट हो रहे हैं।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो  
 नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।  
 विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं  
 न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

आख्याहि—कृपया बताएँ; मे—मुझको; कः—कौन; भवान्—आप; उग्र-रूपः—  
 भयानक रूप; नमः अस्तु—नमस्कार हो; ते—आपको; देव-वर—हे देवताओं में श्रेष्ठ;  
 प्रसीद—प्रसन्न हों; विज्ञातुम्—जानने के लिए; इच्छामि—इच्छुक हूँ; भवन्तम्—  
 आपका; आद्यम्—आदि; न—नहीं; हि—निश्चय ही; प्रजानामि—जानता हूँ; तव—  
 आपका; प्रवृत्तिम्—प्रयोजन ।

हे देवेश! कृपा करके मुझे बतलाइये कि इतने उग्ररूप में आप कौन हैं? मैं आपको नमस्कार करता हूँ, कृपा करके मुझपर प्रसन्न हों। आप आदि-भगवान् हैं। मैं आपको जानना

चाहता हूँ, क्योंकि मैं नहीं जान पा रहा हूँ कि आपका प्रयोजन क्या है।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो  
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।  
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे  
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; कालः—काल; अस्मि—हूँ; लोक—लोकों का; क्षय-कृत्—नाश करने वाला; प्रवृद्धः—महान; लोकान्—समस्त लोगों को; समाहर्तुम्—नष्ट करने में; इह—इस संसार में; प्रवृत्तः—लगा हुआ; ऋते—बिना; अपि—भी; त्वाम्—आपको; न—कभी नहीं; भविष्यन्ति—होंगे; सर्वे—सभी; ये—जो; अवस्थिताः—स्थित; प्रति-अनीकेषु—विपक्ष में; योधाः—सैनिक।

भगवान् ने कहा—समस्त जगतों को विनष्ट करने वाला काल मैं हूँ और मैं यहाँ समस्त लोगों का विनाश करने के लिए आया हूँ। तुम्हारे ( पाण्डवों के ) सिवा दोनों पक्षों के सारे योद्धा मारे जाएँगे।

तात्पर्य

यद्यपि अर्जुन जानता था कि कृष्ण उसके मित्र तथा भगवान् हैं, तो भी वह कृष्ण के विविध रूपों को देखकर चकित था। इसलिए उसने इस विनाशकारी शक्ति के उद्देश्य के बारे में पूछताछ की। वेदों में लिखा है कि परम सत्य हर वस्तु को, यहाँ तक कि ब्राह्मणों को भी, नष्ट कर देते हैं। कठोपनिषद् का ( १.२.२५ ) वचन है—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।

मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥

अन्ततः सारे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अन्य सभी परमेश्वर द्वारा काल-कवलित होते हैं। परमेश्वर का यह रूप सबका भक्षण करने वाला है और यहाँ पर कृष्ण अपने को सर्वभक्षी काल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। केवल

कुछ पाण्डवों के अतिरिक्त युद्धभूमि में आये सभी लोग उनके द्वारा भक्षित होंगे।

अर्जुन लड़ने के पक्ष में न था, वह युद्ध न करना श्रेयस्कर समझता था, क्योंकि तब किसी प्रकार की निराशा न होती। किन्तु भगवान् का उत्तर है कि यदि वह नहीं लड़ता, तो भी सारे लोग उनके ग्रास बनते, क्योंकि यही उनकी इच्छा है। यदि अर्जुन नहीं लड़ता, तो वे सब अन्य विधि से मरते। मृत्यु रोकी नहीं जा सकती, चाहे वह लड़े या नहीं। वस्तुतः वे पहले से मृत हैं। काल विनाश है और परमेश्वर की इच्छानुसार सारे संसार को विनष्ट होना है। यह प्रकृति का नियम है।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; त्वम्—तुम; उत्तिष्ठ—उठो; यशः—यश; लभस्व—प्राप्त करो;  
जित्वा—जीतकर; शत्रून्—शत्रुओं को; भुङ्क्ष्व—भोग करो; राज्यम्—राज्य का;  
समृद्धम्—सम्पन्न; मया—मेरे द्वारा; एव—निश्चय ही; एते—ये सब; निहताः—मारे  
गये; पूर्वम् एव—पहले ही; निमित्त-मात्रम्—केवल कारण मात्र; भव—बनो; सव्य-  
साचिन्—हे सव्यसाची।

अतः उठो! लड़ने के लिए तैयार होओ और यश अर्जित करो। अपने शत्रुओं को जीतकर सम्पन्न राज्य का भोग करो। ये सब मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं और हे सव्यसाची! तुम तो युद्ध में केवल निमित्तमात्र हो सकते हो।

तात्पर्य

सव्यसाची का अर्थ है वह जो युद्धभूमि में अत्यन्त कौशल के साथ तीर छोड़ सके। इस प्रकार अर्जुन को एक पटु योद्धा के रूप में सम्बोधित किया गया है, जो अपने शत्रुओं को तीर से मारकर मौत के घाट उतार सकता है। निमित्तमात्रम्—“केवल कारण मात्र” यह शब्द भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संसार भगवान् की इच्छानुसार गतिमान है। अल्पज्ञ पुरुष

सोचते हैं कि यह प्रकृति बिना किसी योजना के गतिशील है और सारी सृष्टि आकस्मिक है। ऐसे अनेक तथाकथित विज्ञानी हैं, जो यह सुझाव रखते हैं कि सम्भवतया ऐसा था, या ऐसा हो सकता है, किन्तु इस प्रकार के “शायद” या “हो सकता है” का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रकृति द्वारा विशेष योजना संचालित की जा रही है। यह योजना क्या है? यह विराट जगत् बद्धजीवों के लिए भगवान् के धाम वापस जाने के लिए सुअवसर (सुयोग) है। जब तक उनकी प्रवृत्ति प्रकृति के ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने की रहती है, तब तक वे बद्ध रहते हैं। किन्तु जो कोई भी परमेश्वर की इस योजना (इच्छा) को समझ लेता है और कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करता है, वह परम बुद्धिमान है। दृश्यजगत की उत्पत्ति तथा उसका संहार ईश्वर की परम अध्यक्षता में होता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र का युद्ध ईश्वर की योजना के अनुसार लड़ा गया। अर्जुन युद्ध करने से मना कर रहा था, किन्तु उसे बताया गया कि परमेश्वर की इच्छानुसार उसे लड़ना होगा। तभी वह सुखी होगा। यदि कोई कृष्णभावनामृत से पूरित हो और उसका जीवन भगवान् की दिव्य सेवा में अर्पित हो, तो समझो कि वह कृतार्थ है।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च

कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।

मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा

युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

द्रोणम् च—तथा द्रोण; भीष्मम् च—भीष्म भी; जयद्रथम् च—तथा जयद्रथ; कर्णम्—कर्ण; तथा—और; अन्यान्—अन्य; अपि—निश्चय ही; योध-वीरान्—महान योद्धा; मया—मेरे द्वारा; हतान्—पहले ही मारे गये; त्वम्—तुम; जहि—मारो; मा—मत; व्यथिष्ठा:—विचलित होओ; युध्यस्व—लड़ो; जेता असि—जीतोगे; रणे—युद्ध में; सपत्नान्—शत्रुओं को।

द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य महान योद्धा पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। अतः तुम उनका वध करो और तनिक भी विचलित न होओ। तुम केवल युद्ध करो। युद्ध में तुम अपने शत्रुओं को परास्त करोगे।



### तात्पर्य

प्रत्येक योजना भगवान् द्वारा बनती है, किन्तु वे अपने भक्तों पर इतने कृपालु रहते हैं कि जो भक्त उनकी इच्छानुसार उनकी योजना का पालन करते हैं, उन्हें ही वे उसका श्रेय देते हैं। अतः जीवन को इस प्रकार गतिशील होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति कृष्णभावनामृत में कर्म करे और गुरु के माध्यम से भगवान् को जाने। भगवान् की योजनाएँ उन्हीं की कृपा से समझी जाती हैं और भक्तों की योजनाएँ उनकी ही योजनाएँ हैं। मनुष्य को चाहिए कि ऐसी योजनाओं का अनुसरण करे और जीवन-संघर्ष में विजयी बने।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य

कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं

सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

सञ्जयः उवाच—संजय ने कहा; एतत्—इस प्रकार; श्रुत्वा—सुनकर; वचनम्—वाणी; केशवस्य—कृष्ण की; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; वेपमानः—काँपते हुए; किरीटी—अर्जुन ने; नमस्कृत्वा—नमस्कार करके; भूयः—फिर; एव—भी; आह—बोला; कृष्णम्—कृष्ण से; स-गद्गदम्—अवरुद्ध स्वर से; भीत-भीतः—डरा-डरा सा; प्रणम्य—प्रणाम करके।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजा! भगवान् के मुख से इन वचनों को सुनकर काँपते हुए अर्जुन ने हाथ जोड़कर उन्हें बारम्बार नमस्कार किया। फिर उसने भयभीत होकर अवरुद्ध स्वर में कृष्ण से इस प्रकार कहा।

### तात्पर्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भगवान् के विश्वरूप के कारण अर्जुन आश्चर्यचकित था, अतः वह कृष्ण को बारम्बार नमस्कार करने लगा और अवरुद्ध कंठ से आश्चर्य से वह कृष्ण की प्रार्थना मित्र के रूप में नहीं, अपितु भक्त के रूप में करने लगा।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या  
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।  
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति  
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्गाः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अर्जुनः उवाच—अर्जुन ने कहा; स्थाने—यह ठीक है; हृषीक—ईश—हे इन्द्रियों के स्वामी; तव—आपके; प्रकीर्त्या—कीर्ति से; जगत्—सारा संसार; प्रहृष्यति—हर्षित हो रहा है; अनुरज्यते—अनुरक्त हो रहा है; च—तथा; रक्षांसि—असुरगण; भीतानि—डर से; दिशः—सारी दिशाओं में; द्रवन्ति—भाग रहे हैं; सर्वे—सभी; नमस्यन्ति—नमस्कार करते हैं; च—भी; सिद्ध-सङ्गाः—सिद्धपुरुष ।

अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश! आपके नाम के श्रवण से संसार हर्षित होता है और सभी लोग आपके प्रति अनुरक्त होते हैं। यद्यपि सिद्धपुरुष आपको नमस्कार करते हैं, किन्तु असुरगण भयभीत हैं और इधर-उधर भाग रहे हैं। यह ठीक ही हुआ है।

तात्पर्य

कृष्ण से कुरुक्षेत्र युद्ध के परिणाम को सुनकर अर्जुन प्रबुद्ध हो गया और भगवान् के परम भक्त तथा मित्र के रूप में उनसे बोला कि कृष्ण जो कुछ करते हैं, वह सब उचित है। अर्जुन ने पुष्टि की कि कृष्ण ही पालक हैं और भक्तों के आराध्य तथा अवांछित तत्त्वों के संहारकर्ता हैं। उनके सारे कार्य सबों के लिए समान रूप से शुभ होते हैं। यहाँ पर अर्जुन यह समझ पाता है कि जब युद्ध निश्चित रूप से होना था तो अन्तरिक्ष से अनेक देवता, सिद्ध तथा उच्चतर लोकों के बुद्धिमान प्राणी युद्ध को देख रहे थे, क्योंकि युद्ध में कृष्ण उपस्थित थे। जब अर्जुन ने भगवान् का विश्वरूप देखा तो देवताओं को आनन्द हुआ, किन्तु अन्य लोग जो असुर तथा नास्तिक थे, भगवान् की प्रशंसा सुनकर सहन न कर सके। वे भगवान् के विनाशकारी रूप से डर कर भाग गये। भक्तों तथा नास्तिकों के प्रति भगवान् के व्यवहार

की अर्जुन द्वारा प्रशंसा की गई है। भक्त प्रत्येक अवस्था में भगवान् का गुणगान करता है, क्योंकि वह जानता है कि वे जो कुछ भी करते हैं, वह सबों के हित में है।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्  
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।  
अनन्त देवेश जगन्निवास  
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; च—भी; ते—आपको; न—नहीं; नमेरन्—नमस्कार करें; महा-  
आत्मन्—हे महापुरुष; गरीयसे—श्रेष्ठतर लोग; ब्रह्मणः—ब्रह्मा की अपेक्षा; अपि—  
यद्यपि; आदि-कर्त्रे—परम स्रष्टा को; अनन्त—हे अनन्त; देव-ईश—हे ईशों के ईश;  
जगत्-निवास—हे जगत के आश्रय; त्वम्—आप हैं; अक्षरम्—अविनाशी; सत्-  
असत्—कार्य तथा कारण; तत् परम्—दिव्य; यत्—क्योंकि ।

हे महात्मा! आप ब्रह्मा से भी बढ़कर हैं, आप आदि स्रष्टा हैं। तो फिर वे आपको सादर नमस्कार क्यों न करें? हे अनन्त, हे देवेश, हे जगन्निवास! आप परम स्रोत, अक्षर, कारणों के कारण तथा इस भौतिक जगत् से परे हैं।

#### तात्पर्य

अर्जुन इस प्रकार नमस्कार करके यह सूचित करता है कि कृष्ण सबों के पूजनीय हैं। वे सर्वव्यापी हैं और प्रत्येक जीव की आत्मा हैं। अर्जुन कृष्ण को महात्मा कहकर सम्बोधित करता है, जिसका अर्थ है कि वे उदार तथा अनन्त हैं। अनन्त सूचित करता है कि ऐसा कुछ भी नहीं जो भगवान् की शक्ति और प्रभाव से आच्छादित न हो और देवेश का अर्थ है कि वे समस्त देवताओं के नियन्ता हैं और उन सबके ऊपर हैं। वे समग्र विश्व के आश्रय हैं। अर्जुन ने भी सोचा कि यह सर्वथा उपयुक्त है कि सारे सिद्ध तथा शक्तिशाली देवता भगवान् को नमस्कार करते हैं, क्योंकि उनसे बढ़कर कोई नहीं है। अर्जुन विशेष रूप से उल्लेख करता है कि कृष्ण ब्रह्मा से भी बढ़कर हैं, क्योंकि ब्रह्मा उन्हीं के द्वारा उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा का जन्म कृष्ण के पूर्ण विस्तार गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से निकले कमलनाल से

हुआ। अतः ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से उत्पन्न शिव एवं अन्य सारे देवताओं को चाहिए कि उन्हें नमस्कार करें। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि शिव, ब्रह्मा तथा इन जैसे अन्य देवता भगवान् का आदर करते हैं। अक्षरम् शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह जगत् विनाशशील है, किन्तु भगवान् इस जगत् से परे हैं। वे समस्त कारणों के कारण हैं, अतएव वे इस भौतिक प्रकृति के तथा इस दृश्यजगत के समस्त बद्धजीवों से श्रेष्ठ हैं। इसलिए वे परमेश्वर हैं।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-

स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम

त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; आदि-देवः—आदि परमेश्वर; पुरुषः—पुरुष; पुराणः—प्राचीन, सनातन;  
त्वम्—आप; अस्य—इस; विश्वस्य—विश्व का; परम्—दिव्य; निधानम्—आश्रय;  
वेत्ता—जानने वाला; असि—हो; वेद्यम्—जानने योग्य, ज्ञेय; च—तथा; परम्—दिव्य;  
च—और; धाम—वास, आश्रय; त्वया—आपके द्वारा; ततम्—व्याप्त; विश्वम्—विश्व;  
अनन्त-रूप—हे अनन्त रूप वाले।

आप आदि देव, सनातन पुरुष तथा इस दृश्यजगत के परम आश्रय हैं। आप सब कुछ जानने वाले हैं और आप ही वह सब कुछ हैं, जो जानने योग्य है। आप भौतिक गुणों से परे परम आश्रय हैं। हे अनन्त रूप! यह सम्पूर्ण दृश्यजगत आपसे व्याप्त है।

तात्पर्य

प्रत्येक वस्तु भगवान् पर आश्रित है, अतः वे ही परम आश्रय हैं। निधानम् का अर्थ है—ब्रह्म तेज समेत सारी वस्तुएँ भगवान् कृष्ण पर आश्रित हैं। वे इस संसार में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को जानने वाले हैं और यदि ज्ञान का कोई अन्त है, तो वे ही समस्त ज्ञान के अन्त हैं। अतः वे ज्ञाता हैं और ज्ञेय (वेद्यं) भी। वे जानने योग्य हैं, क्योंकि वे सर्वव्यापी

हैं। वैकुण्ठलोक में कारण स्वरूप होने से वे दिव्य हैं। वे दिव्यलोक में भी प्रधान पुरुष हैं।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः  
 प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।  
 नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः  
 पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

#### शब्दार्थ

वायुः—वायु; यमः—नियन्ता; अग्निः—अग्नि; वरुणः—जल; शश-अङ्कः—चन्द्रमा;  
 प्रजापतिः—ब्रह्मा; त्वम्—आप; प्रपितामहः—परबाबा; च—तथा; नमः—मेरा  
 नमस्कार; नमः—पुनः नमस्कार; ते—आपको; अस्तु—हो; सहस्र-कृत्वः—हजार  
 बार; पुनः च—तथा फिर; भूयः—फिर; अपि—भी; नमः—नमस्कार; नमः ते—  
 आपको मेरा नमस्कार है।

आप वायु हैं तथा परम नियन्ता भी हैं। आप अग्नि हैं,  
 जल हैं तथा चन्द्रमा हैं। आप आदि जीव ब्रह्मा हैं और आप  
 प्रपितामह हैं। अतः आपको हजार बार नमस्कार है और  
 पुनःपुनः नमस्कार है।

#### तात्पर्य

भगवान् को वायु कहा गया है, क्योंकि वायु सर्वव्यापी होने के कारण  
 समस्त देवताओं का मुख्य अधिष्ठाता है। अर्जुन कृष्ण को प्रपितामह  
 (परबाबा) कहकर सम्बोधित करता है, क्योंकि वे विश्व के प्रथम जीव  
 ब्रह्मा के पिता हैं।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते  
 नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।  
 अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं  
 सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; पुरस्तात्—सामने से; अथ—भी; पृष्ठतः—पीछे से; ते—आपको;  
 नमः अस्तु—मैं नमस्कार करता हूँ; ते—आपको; सर्वतः—सभी दिशाओं से; एव—

निस्सन्देह; सर्व—क्योंकि आप सब कुछ हैं; अनन्त-वीर्य—असीम पौरुष; अमित-  
विक्रमः—तथा असीम बल; त्वम्—आप; सर्वम्—सब कुछ; समाप्नोषि—आच्छादित  
करते हो; ततः—अतएव; असि—हो; सर्वः—सब कुछ।

आपको आगे, पीछे तथा चारों ओर से नमस्कार है। हे  
असीम शक्ति! आप अनन्त पराक्रम के स्वामी हैं। आप  
सर्वव्यापी हैं, अतः आप सब कुछ हैं।

तात्पर्य

कृष्ण के प्रेम से अभिभूत उनका मित्र अर्जुन सभी दिशाओं से उनको  
नमस्कार कर रहा है। वह स्वीकार करता है कि कृष्ण समस्त बल तथा  
पराक्रम के स्वामी हैं और युद्धभूमि में एकत्र समस्त योद्धाओं से कहीं  
अधिक श्रेष्ठ हैं। *विष्णुपुराण* में (१.९.६९) कहा गया है—

*योऽयं तवागतो देव समीपं देवतागणः ।*

*स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान् ॥*

“आपके समक्ष जो भी आता है, चाहे वह देवता ही क्यों न हो, हे  
भगवान्! वह आपके द्वारा ही उत्पन्न है।”

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं

मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि

विहारशय्यासनभोजनेषु ।

एकोऽथ वाप्यच्युत तत्समक्षं

तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सखा—मित्र; इति—इस प्रकार; मत्वा—मानकर; प्रसभम्—हठपूर्वक; यत्—जो भी;  
उक्तम्—कहा गया; हे कृष्ण—हे कृष्ण; हे यादव—हे यादव; हे सखे—हे मित्र;  
इति—इस प्रकार; अजानता—बिना जाने; महिमानम्—महिमा की; तव—आपकी;  
इदम्—यह; मया—मेरे द्वारा; प्रमादात्—मूर्खतावश; प्रणयेन—प्यार वश; वा अपि—  
या तो; यत्—जो; च—भी; अवहास-अर्थम्—हँसी के लिए; असत्-कृतः—अनादर

किया गया; असि—हो; विहार—आराम में; शय्या—लेटे रहने पर; आसन—बैठे रहने पर; भोजनेषु—या भोजन करते समय; एकः—अकेले; अथ वा—या; अपि—भी; अच्युत—हे अच्युत; तत्-समक्षम्—साथियों के बीच; तत्—उन सभी; क्षामये—क्षमाप्रार्थी हूँ; त्वाम्—आपसे; अहम्—मैं; अप्रमेयम्—अचिन्त्य।

आपको अपना मित्र मानते हुए मैंने हठपूर्वक आपको हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा जैसे सम्बोधनों से पुकारा है, क्योंकि मैं आपकी महिमा को नहीं जानता था। मैंने मूर्खतावश या प्रेमवश जो कुछ भी किया है, कृपया उसके लिए मुझे क्षमा कर दें। यही नहीं, मैंने कई बार आराम करते समय, एकसाथ लेटे हुए या साथ-साथ खाते या बैठे हुए, कभी अकेले तो कभी अनेक मित्रों के समक्ष आपका अनादर किया है। हे अच्युत! मेरे इन समस्त अपराधों को क्षमा करें।

तात्पर्य

यद्यपि अर्जुन के समक्ष कृष्ण अपने विराट रूप में हैं, किन्तु उसे कृष्ण के साथ अपना मैत्रीभाव स्मरण है। इसीलिए वह मित्रता के कारण होने वाले अनेक अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रार्थना कर रहा है। वह स्वीकार करता है कि पहले उसे ज्ञात न था कि कृष्ण ऐसा विराट रूप धारण कर सकते हैं, यद्यपि मित्र के रूप में कृष्ण ने उसे यह समझाया था। अर्जुन को यह भी पता नहीं था कि उसने कितनी बार 'हे मेरे मित्र' 'हे कृष्ण' 'हे यादव' जैसे सम्बोधनों के द्वारा उनका अनादर किया है और उनकी महिमा स्वीकार नहीं की। किन्तु कृष्ण इतने कृपालु हैं कि इतने ऐश्वर्यमण्डित होने पर भी अर्जुन से मित्र की भूमिका निभाते रहे। ऐसा होता है भक्त तथा भगवान् के बीच दिव्य प्रेम का आदान-प्रदान। जीव तथा कृष्ण का सम्बन्ध शाश्वत रूप से स्थिर है, इसे भुलाया नहीं जा सकता, जैसा कि हम अर्जुन के आचरण में देखते हैं। यद्यपि अर्जुन विराट रूप का ऐश्वर्य देख चुका है, किन्तु वह कृष्ण के साथ अपनी मैत्री नहीं भूल सकता।

पितासि लोकस्य चराचरस्य  
 त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।  
 न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो  
 लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥

#### शब्दार्थ

पिता—पिता; असि—हो; लोकस्य—पूरे जगत के; चर—सचल; अचरस्य—तथा अचलों के; त्वम्—आप हैं; अस्य—इसके; पूज्यः—पूज्य; च—भी; गुरुः—गुरु; गरीयान्—यशस्वी, महिमामय; न—कभी नहीं; त्वत्-समः—आपके तुल्य; अस्ति—है; अभ्यधिकः—बढ़ कर; कुतः—किस तरह सम्भव है; अन्यः—दूसरा; लोक-त्रये—तीनों लोकों में; अपि—भी; अप्रतिम-प्रभाव—हे अचिन्त्य शक्ति वाले।

आप इस चर तथा अचर सम्पूर्ण दृश्यजगत के जनक हैं। आप परम पूज्य महान आध्यात्मिक गुरु हैं। न तो कोई आपके तुल्य है, न ही कोई आपके समान हो सकता है। हे अतुल्य शक्ति वाले प्रभु! भला तीनों लोकों में आपसे बढ़कर कोई कैसे हो सकता है?

#### तात्पर्य

भगवान् कृष्ण उसी प्रकार पूज्य हैं, जिस प्रकार पुत्र द्वारा पिता पूज्य होता है। वे गुरु हैं क्योंकि सर्वप्रथम उन्हीं ने ब्रह्मा को वेदों का उपदेश दिया और इस समय वे अर्जुन को भी *भगवद्गीता* का उपदेश दे रहे हैं, अतः वे आदि गुरु हैं और इस समय किसी भी प्रामाणिक गुरु को कृष्ण से प्रारम्भ होने वाली गुरु-परम्परा का वंशज होना चाहिए। कृष्ण का प्रतिनिधि हुए बिना कोई न तो शिक्षक और न आध्यात्मिक विषयों का गुरु हो सकता है।

भगवान् को सभी प्रकार से नमस्कार किया जा रहा है। उनकी महानता अपरिमेय है। कोई भी भगवान् कृष्ण से बढ़कर नहीं, क्योंकि इस लोक में या वैकुण्ठलोक में कृष्ण के समान या उनसे बड़ा कोई नहीं है। सभी लोग उनसे निम्न हैं। कोई उनको पार नहीं कर सकता। *श्वेताश्वतर उपनिषद्* में (६.८) कहा गया है कि—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते



*न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।*

भगवान् कृष्ण के भी सामान्य व्यक्ति की तरह इन्द्रियाँ तथा शरीर हैं, किन्तु उनके लिए अपनी इन्द्रियों, अपने शरीर, अपने मन तथा स्वयं में कोई अन्तर नहीं रहता। जो लोग मूर्ख हैं, वे कहते हैं कि कृष्ण अपने आत्मा, मन, हृदय तथा अन्य प्रत्येक वस्तु से भिन्न हैं। कृष्ण तो परम हैं, अतः उनके कार्य तथा शक्तियाँ भी सर्वश्रेष्ठ हैं। यह भी कहा जाता है कि यद्यपि हमारे समान उनकी इन्द्रियाँ नहीं हैं, तो भी वे सारे ऐन्द्रिय कार्य करते हैं। अतः उनकी इन्द्रियाँ न तो सीमित हैं, न ही अपूर्ण हैं। न तो कोई उनसे बढ़ कर है, न उनके तुल्य कोई है। सभी लोग उनसे घट कर हैं।

परम पुरुष का ज्ञान, शक्ति तथा कर्म सभी कुछ दिव्य है। *भगवद्गीता* में (४.९) कहा गया है—

*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।*

*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥*

जो कोई कृष्ण के दिव्य शरीर, कर्म तथा पूर्णता को जान लेता है, वह इस शरीर को छोड़ने के बाद उनके धाम को जाता है और फिर इस दुखमय संसार में वापस नहीं आता। अतः मनुष्य को जान लेना चाहिए कि कृष्ण के कार्य अन्यो से भिन्न होते हैं। सर्वश्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि कृष्ण के नियमों का पालन किया जाय, इससे मनुष्य सिद्ध बनेगा। यह भी कहा गया है कि कोई ऐसा नहीं जो कृष्ण का गुरु बन सके, सभी तो उनके दास हैं। *चैतन्य चरितामृत* (आदि ५.१४२) से इसकी पुष्टि होती है—*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—केवल कृष्ण ईश्वर हैं, शेष सभी उनके दास हैं। प्रत्येक व्यक्ति उनके आदेश का पालन करता है। कोई ऐसा नहीं जो उनके आदेश का उल्लंघन कर सके। प्रत्येक व्यक्ति उनकी अध्यक्षता में होने के कारण उनके निर्देश के अनुसार कार्य करता है। जैसा कि *ब्रह्मसंहिता* में कहा गया है कि वे समस्त कारणों के कारण हैं।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं  
 प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।  
 पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः  
 प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; प्रणम्य—प्रणाम करके; प्रणिधाय—प्रणत करके; कायम्—शरीर को; प्रसादये—कृपा की याचना करता हूँ; त्वाम्—आपसे; अहम्—मैं; ईशम्—भगवान् से; ईड्यम्—पूज्य; पिता इव—पिता तुल्य; पुत्रस्य—पुत्र का; सखा इव—मित्रवत्; सख्युः—मित्र का; प्रियः—प्रेमी; प्रियायाः—प्रिया का; अर्हसि—आपको चाहिए; देव—मेरे प्रभु; सोढुम्—सहन करना ।

आप प्रत्येक जीव द्वारा पूजनीय भगवान् हैं। अतः मैं गीरकर सादर प्रणाम करता हूँ और आपकी कृपा की याचना करता हूँ। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की ढिठाई सहन करता है, या मित्र अपने मित्र की घृष्टता सह लेता है, या प्रिय अपनी प्रिया का अपराध सहन कर लेता है, उसी प्रकार आप कृपा करके मेरी त्रुटियों को सहन कर लें।

#### तात्पर्य

कृष्ण के भक्त उनके साथ विविध प्रकार के सम्बन्ध रखते हैं—कोई कृष्ण को पुत्रवत्, कोई पति रूप में, कोई मित्र रूप में या कोई स्वामी के रूप में मान सकता है। कृष्ण और अर्जुन का सम्बन्ध मित्रता का है। जिस प्रकार पिता, पति या स्वामी सब अपराध सहन कर लेते हैं उसी प्रकार कृष्ण सहन करते हैं।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा  
 भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।  
 तदेव मे दर्शय देव रूपं  
 प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

अदृष्ट-पूर्वम्—पहले कभी न देखा गया; हर्षितः—हर्षित; अस्मि—हूँ; दृष्ट्वा—देखकर; भयेन—भय के कारण; च—भी; प्रव्यथितम्—विचलित, भयभीत; मनः—मन; मे—मेरा; तत्—वह; एव—निश्चय ही; मे—मुझको; दर्शय—दिखलाइये; देव—हे प्रभु; रूपम्—रूप; प्रसीद—प्रसन्न होइये; देव-ईश—ईशों के ईश; जगत्-निवास—हे जगत के आश्रय।

पहले कभी न देखे गये आपके इस विराट रूप का दर्शन करके मैं पुलकित हो रहा हूँ, किन्तु साथ ही मेरा मन भयभीत हो रहा है। अतः आप मुझ पर कृपा करें और हे देवेश, हे जगन्निवास! अपना पुरुषोत्तम भगवत् स्वरूप पुनः दिखाएँ।

#### तात्पर्य

अर्जुन को कृष्ण पर विश्वास है, क्योंकि वह उनका प्रिय मित्र है और मित्र रूप में वह अपने मित्र के ऐश्वर्य को देखकर अत्यन्त पुलकित है। अर्जुन यह देख कर अत्यन्त प्रसन्न है कि उसके मित्र कृष्ण भगवान् हैं और वे ऐसा विराट रूप प्रदर्शित कर सकते हैं। किन्तु साथ ही वह इस विराट रूप को देखकर भयभीत है कि उसने अनन्य मैत्रीभाव के कारण कृष्ण के प्रति अनेक अपराध किये हैं। इस प्रकार भयवश उसका मन विचलित है, यद्यपि भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। अतएव अर्जुन कृष्ण से प्रार्थना करता है कि वे अपना नारायण रूप दिखाएँ, क्योंकि वे कोई भी रूप धारण कर सकते हैं। यह विराट रूप भौतिक जगत के ही तुल्य भौतिक एवं नश्वर है। किन्तु वैकुण्ठलोक में नारायण के रूप में उनका शाश्वत चतुर्भुज रूप रहता है। वैकुण्ठलोक में असंख्य लोक हैं और कृष्ण इन सबमें अपने भिन्न नामों से अंश रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार अर्जुन वैकुण्ठलोक के उनके किसी एक रूप को देखना चाहता था। निस्सन्देह प्रत्येक वैकुण्ठलोक में नारायण का स्वरूप चतुर्भुजी है, किन्तु इन चारों हाथों में वे विभिन्न क्रम में शंख, गदा, कमल तथा चक्र के चिह्न धारण किये रहते हैं। विभिन्न हाथों में इन चारों चिह्नों के अनुसार नारायण भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं। ये सारे रूप कृष्ण के ही हैं, इसलिए अर्जुन कृष्ण के चतुर्भुज रूप का दर्शन करना चाहता है।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-  
 मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।  
 तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन  
 सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

किरीटिनम्—मुकुट धारण किये; गदिनम्—गदाधारी; चक्र-हस्तम्—चक्रधारण किये; इच्छामि—इच्छुक हूँ; त्वाम्—आपको; द्रष्टुम्—देखना; अहम्—मैं; तथा एव—उसी स्थिति में; तेन एव—उसी; रूपेण—रूप में; चतुः-भुजेन—चार हाथों वाले; सहस्र-बाहो—हे हजार भुजाओं वाले; भव—हो जाइये; विश्व-मूर्ते—हे विराट रूप।

हे विराट रूप! हे सहस्रभुज भगवान्! मैं आपके मुकुटधारी चतुर्भुज रूप का दर्शन करना चाहता हूँ, जिसमें आप अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हों। मैं उसी रूप को देखने की इच्छा करता हूँ।

#### तात्पर्य

ब्रह्मसंहिता में (५.३९) कहा गया है—रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्—भगवान् सैकड़ों हजारों रूपों में नित्य विद्यमान रहते हैं जिनमें से राम, नृसिंह, नारायण उनके मुख्य रूप हैं। रूप तो असंख्य हैं, किन्तु अर्जुन को ज्ञात था कि कृष्ण ही आदि भगवान् हैं, जिन्होंने यह क्षणिक विश्वरूप धारण किया है। अब वह प्रार्थना कर रहा है कि भगवान् अपने नारायण नित्यरूप का दर्शन दें। इस श्लोक से श्रीमद्भागवत के कथन की निस्सन्देह पुष्टि होती है कि कृष्ण आदि भगवान् हैं और अन्य सारे रूप उन्हीं से प्रकट होते हैं। वे अपने अंशों से भिन्न नहीं हैं और वे अपने असंख्य रूपों में भी ईश्वर ही बने रहते हैं। इन सारे रूपों में वे तरुण दिखते हैं। यही भगवान् का स्थायी लक्षण है। कृष्ण को जानने वाला इस भौतिक संसार के समस्त कल्मष से मुक्त हो जाता है।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं  
 रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।  
 तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं  
 यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; मया—मेरे द्वारा; प्रसन्नेन—प्रसन्न; तव—तुमको; अर्जुन—हे अर्जुन; इदम्—इस; रूपम्—रूप को; परम्—दिव्य; दर्शितम्—दिखाया गया; आत्म-योगात्—अपनी अन्तरंगाशक्ति से; तेजः-मयम्—तेज से पूर्ण; विश्वम्—समग्र ब्रह्माण्ड को; अनन्तम्—असीम; आद्यम्—आदि; यत्—जो; मे—मेरा; त्वत् अन्येन—तुम्हारे अतिरिक्त अन्य के द्वारा; न दृष्ट-पूर्वम्—किसी ने पहले नहीं देखा।

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी अन्तरंगा शक्ति के बल पर तुम्हें इस संसार में अपने इस परम विश्वरूप का दर्शन कराया है। इसके पूर्व अन्य किसी ने इस असीम तथा तेजोमय आदि-रूप को कभी नहीं देखा था।

#### तात्पर्य

अर्जुन भगवान् के विश्वरूप को देखना चाहता था, अतः भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त अर्जुन पर अनुकम्पा करते हुए उसे अपने तेजोमय तथा ऐश्वर्यमय विश्वरूप का दर्शन कराया। यह रूप सूर्य की भाँति चमक रहा था और इसके मुख निरन्तर परिवर्तित हो रहे थे। कृष्ण ने यह रूप अर्जुन की इच्छा को शान्त करने के लिए ही दिखलाया। यह रूप कृष्ण की उस अन्तरंगाशक्ति द्वारा प्रकट हुआ जो मानव कल्पना से परे है। अर्जुन से पूर्व भगवान् के इस विश्वरूप का किसी ने दर्शन नहीं किया था, किन्तु जब अर्जुन को यह रूप दिखाया गया तो स्वर्गलोक तथा अन्य लोकों के भक्त भी इसे देख सके। उन्होंने इस रूप को पहले नहीं देखा था, केवल अर्जुन के कारण वे इसे देख पा रहे थे। दूसरे शब्दों में, कृष्ण की कृपा से भगवान् के सारे शिष्य भक्त उस विश्वरूप का दर्शन कर सके, जिसे अर्जुन देख रहा था। किसी ने टीका की है कि जब कृष्ण सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास गये थे, तो उसे भी इसी रूप का दर्शन कराया गया था। दुर्भाग्यवश दुर्योधन ने शान्ति प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, किन्तु कृष्ण ने उस समय

अपने कुछ रूप दिखाए थे। किन्तु वे रूप अर्जुन को दिखाये गये इस रूप से सर्वथा भिन्न थे। यह स्पष्ट कहा गया है कि इस रूप को पहले किसी ने भी नहीं देखा था।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-

र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।

एवंरूपः शक्य अहं नृलोके

द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; वेद-यज्ञ—यज्ञ द्वारा; अध्ययनैः—या वेदों के अध्ययन से; न—कभी नहीं; दानैः—दान के द्वारा; न—कभी नहीं; च—भी; क्रियाभिः—पुण्य कर्मों से; न—कभी नहीं; तपोभिः—तपस्या के द्वारा; उग्रैः—कठोर; एवम्-रूपः—इस रूप में; शक्यः—समर्थ; अहम्—मैं; नृ-लोके—इस भौतिक जगत में; द्रष्टुम्—देखे जाने में; त्वत्—तुम्हारे अतिरिक्त; अन्येन—अन्य के द्वारा; कुरु-प्रवीर—कुरु योद्धाओं में श्रेष्ठ।

हे कुरुश्रेष्ठ! तुमसे पूर्व मेरे इस विश्वरूप को किसी ने नहीं देखा, क्योंकि मैं न तो वेदाध्ययन के द्वारा, न यज्ञ, दान, पुण्य या कठिन तपस्या के द्वारा इस रूप में, इस संसार में देखा जा सकता हूँ।

तात्पर्य

इस प्रसंग में दिव्य दृष्टि को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। तो यह दिव्य दृष्टि किसके पास हो सकती है? दिव्य का अर्थ है दैवी। जब तक कोई देवता के रूप में दिव्यता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। और देवता कौन है? वैदिक शास्त्रों का कथन है कि जो भगवान् विष्णु के भक्त हैं, वे देवता हैं (*विष्णुभक्ताः स्मृता देवाः*)। जो नास्तिक हैं, अर्थात् जो विष्णु में विश्वास नहीं करते या जो कृष्ण के निर्विशेष अंश को परमेश्वर मानते हैं, उन्हें यह दिव्य दृष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। ऐसा सम्भव नहीं है कि कृष्ण का विरोध करके कोई दिव्य दृष्टि भी प्राप्त कर सके। दिव्य बने बिना दिव्य दृष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में, जिन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है, वे भी अर्जुन की ही तरह विश्वरूप देख सकते हैं।

*भगवद्गीता* में विश्वरूप का विवरण है। यद्यपि अर्जुन के पूर्व यह विवरण अज्ञात था, किन्तु इस घटना के बाद अब विश्वरूप का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। जो लोग सचमुच ही दिव्य हैं, वे भगवान् के विश्वरूप को देख सकते हैं। किन्तु कृष्ण का शुद्धभक्त बने बिना कोई दिव्य नहीं बन सकता। किन्तु जो भक्त सचमुच दिव्य प्रकृति के हैं, और जिन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है, वे भगवान् के विश्वरूप का दर्शन करने के लिए उत्सुक नहीं रहते। जैसा कि पिछले श्लोक में कहा गया है, अर्जुन ने कृष्ण के चतुर्भुजी विष्णु रूप को देखना चाहा, क्योंकि विश्वरूप को देखकर वह सचमुच भयभीत हो उठा था।

इस श्लोक में कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द हैं, यथा *वेदयज्ञाध्ययनैः* जो वेदों तथा यज्ञानुष्ठानों से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन का निर्देश करता है। वेदों का अर्थ है, समस्त प्रकार का वैदिक साहित्य यथा चारों वेद ( ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व ) एवं अठारहों पुराण, सारे उपनिषद् तथा वेदान्त सूत्र। मनुष्य इन सबका अध्ययन चाहे घर में करे या अन्यत्र। इसी प्रकार यज्ञ विधि के अध्ययन करने के अनेक सूत्र हैं—*कल्पसूत्र तथा मीमांसा-सूत्र*।

*दानैः सुपात्र को दान देने के अर्थ में आया है*; जैसे वे लोग जो भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं, यथा ब्राह्मण तथा वैष्णव। इसी प्रकार *क्रियाभिः* शब्द अग्निहोत्र के लिए है और विभिन्न वर्णों के कर्मों का सूचक है। शारीरिक कष्टों को स्वेच्छा से अंगीकर करना तपस्या है। इस तरह मनुष्य भले ही इन सारे कार्यों—*तपस्या, दान, वेदाध्ययन आदि* को करे, किन्तु जब तक वह अर्जुन की भाँति भक्त नहीं होता, तब तक वह विश्वरूप का दर्शन नहीं कर सकता। निर्विशेषवादी भी कल्पना करते रहते हैं कि वे भगवान् के विश्वरूप का दर्शन कर रहे हैं, किन्तु भगवद्गीता से हम जानते हैं कि निर्विशेषवादी भक्त नहीं हैं। फलतः वे भगवान् के विश्वरूप को नहीं देख पाते।

ऐसे अनेक पुरुष हैं जो अवतारों की सृष्टि करते हैं। वे झूठे ही सामान्य व्यक्ति को अवतार मानते हैं, किन्तु यह मूर्खता है। हमें तो *भगवद्गीता* का अनुसरण करना चाहिए, अन्यथा पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं है। यद्यपि *भगवद्गीता* को भगवत्तत्त्व का प्राथमिक अध्ययन माना जाता है, तो भी यह इतना पूर्ण है कि कौन क्या है, इसका अन्तर बताया जा सकता है। छद्म अवतार के समर्थक यह कह सकते हैं कि उन्होंने भी ईश्वर के दिव्य अवतार विश्वरूप को देखा है, किन्तु यह स्वीकार्य नहीं, क्योंकि यहाँ पर यह स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कृष्ण का भक्त बने बिना ईश्वर के विश्वरूप को नहीं देखा जा सकता। अतः पहले कृष्ण का शुद्धभक्त बनना होता है, तभी कोई दावा कर सकता है कि वह

विश्वरूप का दर्शन करा सकता है, जिसे उसने देखा है। कृष्ण का भक्त कभी भी छद्म अवतारों को या इनके अनुयायियों को मान्यता नहीं देता।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो  
 दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृममेदम् ।  
 व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं  
 तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

#### शब्दार्थ

मा—न हो; ते—तुम्हें; व्यथा—पीड़ा, कष्ट; मा—न हो; च—भी; विमूढ-भावः—  
 मोह; दृष्ट्वा—देखकर; रूपम्—रूप को; घोरम्—भयानक; ईदृक्—इस प्रकार का;  
 मम—मेरे; इदम्—इस; व्यपेत-भीः—सभी प्रकार के भय से मुक्त; प्रीत-मनाः—प्रसन्न  
 चित्त; पुनः—फिर; त्वम्—तुम; तत्—उस; एव—इस प्रकार; मे—मेरे; रूपम्—रूप  
 को; इदम्—इस; प्रपश्य—देखो।

तुम मेरे इस भयानक रूप को देखकर अत्यन्त विचलित एवं मोहित हो गये हो। अब इसे समाप्त करता हूँ। हे मेरे भक्त! तुम समस्त चिन्ताओं से पुनः मुक्त हो जाओ। तुम शान्त चित्त से अब अपना इच्छित रूप देख सकते हो।

#### तात्पर्य

भगवद्गीता के प्रारम्भ में अर्जुन अपने पूज्य पितामह भीष्म तथा गुरु द्रोण के वध के विषय में चिन्तित था। किन्तु कृष्ण ने कहा कि उसे अपने पितामह का वध करने से डरना नहीं चाहिए। जब कौरवों की सभा में धृतराष्ट्र के पुत्र द्रौपदी को विवस्त्र करना चाह रहे थे, तो भीष्म तथा द्रोण मौन थे, अतः कर्तव्यविमुख होने के कारण इनका वध होना चाहिए। कृष्ण ने अर्जुन को अपने विश्वरूप का दर्शन यह दिखाने के लिए कराया कि ये लोग अपने कुकृत्यों के कारण पहले ही मारे जा चुके हैं। यह दृश्य अर्जुन को इसलिए दिखलाया गया, क्योंकि भक्त शान्त होते हैं और ऐसे जघन्य कर्म नहीं कर सकते। विश्वरूप प्रकट करने का अभिप्राय स्पष्ट हो चुका था। अब अर्जुन कृष्ण के चतुर्भुज रूप को देखना चाह रहा था। अतः उन्होंने यह रूप दिखाया। भक्त कभी भी विश्वरूप देखने में रुचि नहीं लेता क्योंकि इससे प्रेमानुभूति का आदान-प्रदान नहीं हो सकता। भक्त या तो



अपना पूजाभाव अर्पित करना चाहता है या दो भुजा वाले कृष्ण का दर्शन करना चाहता है जिससे वह भगवान् के साथ प्रेमाभक्ति का आदान-प्रदान कर सके।

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा

स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।

आश्वासयामास च भीतमेनं

भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

सञ्जयः उवाच—संजय ने कहा; इति—इस प्रकार; अर्जुनम्—अर्जुन को; वासुदेवः—कृष्ण ने; तथा—उस प्रकार से; उक्त्वा—कहकर; स्वकम्—अपना, स्वीय; रूपम्—रूप को; दर्शयाम् आस—दिखलाया; भूयः—फिर; आश्वासयाम् आस—धीरज धराया; च—भी; भीतम्—भयभीत; एनम्—उसको; भूत्वा—होकर; पुनः—फिर; सौम्य-वपुः—सुन्दर रूप; महा-आत्मा—महापुरुष।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—अर्जुन से इस प्रकार कहने के बाद भगवान् कृष्ण ने अपना असली चतुर्भुज रूप प्रकट किया और अन्त में दो भुजाओं वाला अपना रूप प्रदर्शित करके भयभीत अर्जुन को धैर्य बंधाया।

तात्पर्य

जब कृष्ण वसुदेव तथा देवकी के पुत्र रूप में प्रकट हुए तो पहले वे चतुर्भुज नारायण रूप में ही प्रकट हुए, किन्तु जब उनके माता-पिता ने प्रार्थना की तो उन्होंने सामान्य बालक का रूप धारण कर लिया। उसी प्रकार कृष्ण को ज्ञात था कि अर्जुन उनके चतुर्भुज रूप को देखने का इच्छुक नहीं है, किन्तु चूँकि अर्जुन ने उनको इस रूप में देखने की प्रार्थना की थी, अतः कृष्ण ने पहले अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया और फिर वे अपने दो भुजाओं वाले रूप में प्रकट हुए। सौम्यवपुः शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है अत्यन्त सुन्दर रूप। जब कृष्ण विद्यमान थे तो सारे लोग उनके रूप पर ही मोहित हो जाते थे और चूँकि कृष्ण इस विश्व के निर्देशक हैं, अतः उन्होंने अपने भक्त अर्जुन का भय दूर किया और पुनः

उसे अपना सुन्दर (सौम्य) रूप दिखलाया। *ब्रह्मसंहिता* में (५.३८) कहा गया है—*प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन*—जिस व्यक्ति की आँखों में प्रेमरूपी अंजन लगा है, वही कृष्ण के सौम्यरूप का दर्शन कर सकता है।

*अर्जुन उवाच*

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

**शब्दार्थ**

अर्जुनः उवाच—अर्जुन ने कहा; दृष्ट्वा—देखकर; इदम्—इस; मानुषम्—मानवी; रूपम्—रूप को; तव—आपके; सौम्यम्—अत्यन्त सुन्दर; जनार्दन—हे शत्रुओं को दण्डित करने वाले; इदानीम्—अब; अस्मि—हूँ; संवृत्तः—स्थिर; स-चेताः—अपनी चेतना में; प्रकृतिम्—अपनी प्रकृति को; गतः—पुनः प्राप्त हूँ।

जब अर्जुन ने कृष्ण को उनके आदि रूप में देखा तो कहा—हे जनार्दन! आपके इस अतीव सुन्दर मानवी रूप को देखकर मैं अब स्थिरचित्त हूँ और मैंने अपनी प्राकृत अवस्था प्राप्त कर ली है।

**तात्पर्य**

यहाँ पर प्रयुक्त *मानुषं रूपम्* शब्द स्पष्ट सूचित करते हैं कि भगवान् मूलतः दो भुजाओं वाले हैं। जो लोग कृष्ण को सामान्य व्यक्ति मानकर उनका उपहास करते हैं, उनको यहाँ पर भगवान् की दिव्य प्रकृति से अनभिज्ञ बताया गया है। यदि कृष्ण सामान्य मनुष्य होते तो उनके लिए पहले विश्वरूप और फिर चतुर्भुज नारायण रूप दिखा पाना कैसे सम्भव हो पाता? अतः *भगवद्गीता* में यह स्पष्ट उल्लेख है कि जो कृष्ण को सामान्य व्यक्ति मानता है और पाठक को यह कहकर भ्रान्त करता है कि कृष्ण के भीतर का निर्विशेष ब्रह्म बोल रहा है, वह सबसे बड़ा अन्याय करता है। कृष्ण ने सचमुच अपने विश्वरूप को तथा चतुर्भुज विष्णुरूप को प्रदर्शित किया। तो फिर वे किस तरह सामान्य पुरुष हो सकते हैं? शुद्ध भक्त कभी भी ऐसी गुमराह करने वाली टीकाओं से विचलित नहीं होता, क्योंकि वह वास्तविकता से अवगत रहता है। *भगवद्गीता* के मूल श्लोक सूर्य की भाँति स्पष्ट हैं, मूर्ख टीकाकारों को उन पर प्रकाश डालने की कोई आवश्यकता नहीं है।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

श्री- भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; सु-दुर्दर्शम्—देख पाने में अत्यन्त कठिन; इदम्—इस; रूपम्—रूप को; दृष्टवान् असि—जैसा तुमने देखा; यत्—जो; मम—मेरे; देवाः—देवता; अपि—भी; अस्य—इस; रूपस्य—रूप का; नित्यम्—शाश्वत; दर्शन-काङ्क्षिणः—दर्शनाभिलाषी ।

श्रीभगवान् ने कहा—हे अर्जुन! तुम मेरे जिस रूप को इस समय देख रहे हो, उसे देख पाना अत्यन्त दुष्कर है। यहाँ तक कि देवता भी इस अत्यन्त प्रिय रूप को देखने की ताक में रहते हैं।

तात्पर्य

इस अध्याय के ४८वें श्लोक में भगवान् कृष्ण ने अपना विश्वरूप दिखाना बन्द किया और अर्जुन को बताया कि अनेक तप, यज्ञ आदि करने पर भी इस रूप को देख पाना असम्भव है। अब सुदुर्दर्शम् शब्द का प्रयोग किया जा रहा है जो सूचित करता है कि कृष्ण का द्विभुज रूप और अधिक गुह्य है। कोई तपस्या, वेदाध्ययन तथा दार्शनिक चिंतन आदि विभिन्न क्रियाओं के साथ थोड़ा सा भक्ति-तत्त्व मिलाकर कृष्ण के विश्वरूप का दर्शन संभवतः कर सकता है, लेकिन 'भक्ति-तत्त्व' के बिना यह संभव नहीं है, इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। फिर भी विश्वरूप से आगे कृष्ण का द्विभुज रूप है, जिसे ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी देख पाना और भी कठिन है। वे उनका दर्शन करना चाहते हैं और श्रीमद्भागवत में प्रमाण है कि जब भगवान् अपनी माता देवकी के गर्भ में थे, तो स्वर्ग के सारे देवता कृष्ण के चमत्कार को देखने के लिए आये और उन्होंने उत्तम स्तुतियाँ कीं, यद्यपि उस समय वे दृष्टिगोचर नहीं थे। वे उनके दर्शन की प्रतीक्षा करते रहे। मूर्ख व्यक्ति उन्हें सामान्य जन समझकर भले ही उनका उपहास कर ले और उनका सम्मान न करके उनके भीतर स्थित किसी निराकार 'कुछ' का सम्मान करे, किन्तु

यह सब मूर्खतापूर्ण व्यवहार है। कृष्ण के द्विभुज रूप का दर्शन तो ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवता तक करना चाहते हैं।

*भगवद्गीता* (९.११) में इसकी पुष्टि हुई है—*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*—जो लोग उनका उपहास करते हैं, वे उन्हें दृश्य नहीं होते। जैसा कि *ब्रह्मसंहिता* में तथा स्वयं कृष्ण द्वारा *भगवद्गीता* में पुष्टि हुई है, कृष्ण का शरीर सच्चिदानन्द स्वरूप है। उनका शरीर कभी भी भौतिक शरीर जैसा नहीं होता। किन्तु जो लोग *भगवद्गीता* या इसी प्रकार के वैदिक शास्त्रों को पढ़कर कृष्ण का अध्ययन करते हैं, उनके लिए कृष्ण समस्या बने रहते हैं। जो भौतिक विधि का प्रयोग करता है उसके लिए कृष्ण एक महान ऐतिहासिक पुरुष तथा अत्यन्त विद्वान् चिन्तक हैं, यद्यपि वे सामान्य व्यक्ति हैं और इतने शक्तिमान् होते हुए भी उन्हें भौतिक शरीर धारण करना पड़ा। अन्ततोगत्वा वे परम सत्य को निर्विशेष मानते हैं, अतः वे सोचते हैं कि भगवान् ने अपने निराकार रूप से ही साकार रूप धारण किया। परमेश्वर के विषय में ऐसा अनुमान नितान्त भौतिकतावादी है। दूसरा अनुमान भी काल्पनिक है। जो लोग ज्ञान की खोज में हैं, वे भी कृष्ण का चिन्तन करते हैं और उन्हें उनके विश्वरूप से कम महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार कुछ लोग सोचते हैं कि अर्जुन के समक्ष कृष्ण का जो रूप प्रकट हुआ था, वह उनके साकार रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार कृष्ण का साकार रूप काल्पनिक है। उनका विश्वास है कि परम सत्य व्यक्ति नहीं है। किन्तु *भगवद्गीता* के चतुर्थ अध्याय में दिव्य विधि का वर्णन है और वह कृष्ण के विषय में प्रामाणिक व्यक्तियों से श्रवण करने की है। यही वास्तविक वैदिक विधि है और जो लोग सचमुच वैदिक परम्परा में हैं, वे किसी अधिकारी से ही कृष्ण के विषय में श्रवण करते हैं और बारम्बार श्रवण करने से कृष्ण उनके प्रिय हो जाते हैं। जैसा कि हम कई बार बता चुके हैं कि कृष्ण अपनी योगमाया शक्ति से आच्छादित हैं। उन्हें हर कोई नहीं देख सकता। वही उन्हें देख पाता है, जिसके समक्ष वे प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि वेदों में हुई है, किन्तु जो शरणागत हो चुका है, वह परम सत्य को सचमुच समझ सकता है। निरन्तर कृष्णभावनामृत से तथा कृष्ण की भक्ति से आध्यात्मिक आँखें खुल जाती हैं और वह कृष्ण

को प्रकट रूप में देख सकता है। ऐसा प्राकट्य देवताओं तक के लिए दुर्लभ है, अतः वे भी उन्हें नहीं समझ पाते और उनके द्विभुज रूप के दर्शन की ताक में रहते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि यद्यपि कृष्ण के विश्वरूप का दर्शन कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है और हर कोई ऐसा नहीं कर सकता, किन्तु उनके श्यामसुन्दर रूप को समझ पाना तो और भी कठिन है।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।

शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

#### शब्दार्थ

न—कभी नहीं; अहम्—मैं; वेदैः—वेदाध्ययन से; न—कभी नहीं; तपसा—कठिन तपस्या द्वारा; न—कभी नहीं; दानेन—दान से; न—कभी नहीं; च—भी; इज्यया—पूजा से; शक्यः—सम्भव है; एवम्-विधः—इस प्रकार से; द्रष्टुम्—देख पाना; दृष्टवान्—देख रहे; असि—तुम हो; माम्—मुझको; यथा—जिस प्रकार।

तुम अपने दिव्य नेत्रों से जिस रूप का दर्शन कर रहे हो, उसे न तो वेदाध्ययन से, न कठिन तपस्या से, न दान से, न पूजा से ही जाना जा सकता है। कोई इन साधनों के द्वारा मुझे मेरे रूप में नहीं देख सकता।

#### तात्पर्य

कृष्ण पहले अपनी माता देवकी तथा पिता वसुदेव के समक्ष चतुर्भुज रूप में प्रकट हुए थे और तब उन्होंने अपना द्विभुज रूप धारण किया था। जो लोग नास्तिक हैं, या भक्तिविहीन हैं, उनके लिए इस रहस्य को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। जिन विद्वानों ने केवल व्याकरण विधि से या कोरी शैक्षिक योग्यताओं के आधार पर वैदिक साहित्य का अध्ययन किया है, वे कृष्ण को नहीं समझ सकते। न ही वे लोग कृष्ण को समझ सकेंगे, जो औपचारिक पूजा करने के लिए मन्दिर जाते हैं। वे भले ही वहाँ जाते रहें, वे कृष्ण के असली रूप को नहीं समझ सकेंगे। कृष्ण को तो केवल भक्तिमार्ग से समझा जा सकता है, जैसा कि कृष्ण ने स्वयं अगले श्लोक में बताया है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।  
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥

### शब्दार्थ

भक्त्या—भक्ति से; तु—लेकिन; अनन्यया—सकामकर्म तथा ज्ञान से रहित; शक्यः—सम्भव; अहम्—मैं; एवम्-विधः—इस प्रकार; अर्जुन—हे अर्जुन; ज्ञातुम्—जानने; द्रष्टुम्—देखने; च—तथा; तत्त्वेन—वास्तव में; प्रवेष्टुम्—प्रवेश करने; च—भी; परन्तप—हे बलिष्ठ भुजाओं वाले ।

हे अर्जुन! केवल अनन्य भक्ति द्वारा मुझे उस रूप में समझा जा सकता है, जिस रूप में मैं तुम्हारे समक्ष खड़ा हूँ और इसी प्रकार मेरा साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है। केवल इसी विधि से तुम मेरे ज्ञान के रहस्य को पा सकते हो।

### तात्पर्य

कृष्ण को केवल अनन्य भक्तियोग द्वारा समझा जा सकता है। इस श्लोक में वे इसे स्पष्टतया कहते हैं, जिससे ऐसे अनधिकारी टीकाकार जो *भगवद्गीता* को केवल कल्पना के द्वारा समझना चाहते हैं, यह जान सकें कि वे समय का अपव्यय कर रहे हैं। कोई यह नहीं जान सकता कि वे किस प्रकार चतुर्भुज रूप में माता के गर्भ से उत्पन्न हुए और फिर तुरन्त ही दो भुजाओं वाले रूप में बदल गये। ये बातें न तो वेदों के अध्ययन से समझी जा सकती हैं, न दार्शनिक चिन्तन द्वारा। अतः यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि न तो कोई उन्हें देख सकता है और न इन बातों का रहस्य ही समझ सकता है। किन्तु जो लोग वैदिक साहित्य के अनुभवी विद्यार्थी हैं वे अनेक प्रकार से वैदिक ग्रंथों के माध्यम से उन्हें जान सकते हैं। इसके लिए अनेक विधि-विधान हैं और यदि कोई सचमुच उन्हें जानना चाहता है तो उसे प्रामाणिक ग्रंथों में उल्लिखित विधियों का पालन करना चाहिए। वह इन नियमों के अनुसार तपस्या कर सकता है। उदाहरणार्थ, कठिन तपस्या के हेतु वह कृष्णजन्माष्टमी को, जो कृष्ण का आविर्भाव दिवस है, तथा मास की दोनों एकादशियों को उपवास कर सकता है। जहाँ तक दान का सम्बन्ध है, यह बात साफ है कि उन कृष्ण भक्तों को यह दान दिया जाय जो संसार भर में कृष्ण-दर्शन को या कृष्णभावनामृत को फैलाने में लगे

हुए हैं। कृष्णभावनामृत मानवता के लिए वरदान है। रूप गोस्वामी ने भगवान् चैतन्य की प्रशंसा परम दानवीर के रूप में की है, क्योंकि उन्होंने कृष्ण प्रेम का मुक्तरीति से विस्तार किया, जिसे प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है। अतः यदि कोई कृष्णभावनामृत का प्रचार करने वाले व्यक्तियों को अपना धन दान में देता है, तो कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए दिया गया यह दान संसार का सबसे बड़ा दान है। और यदि कोई मन्दिर में जाकर विधिपूर्वक पूजा करता है (भारत के मन्दिरों में सदा कोई न कोई मूर्ति, सामान्यतया विष्णु या कृष्ण की मूर्ति रहती है) तो यह भगवान् की पूजा करके तथा उन्हें सम्मान प्रदान करके उन्नति करने का अवसर होता है। नौसिखियों के लिए भगवान् की भक्ति करते हुए मन्दिर-पूजा अनिवार्य है, जिसकी पुष्टि *श्वेताश्वतर उपनिषद्* में (६.२३) हुई है—

*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।*

*तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥*

जिसमें भगवान् के लिए अविचल भक्तिभाव होता है और जिसका मार्गदर्शन गुरु करता है, जिसमें भी उसकी वैसी ही अविचल श्रद्धा होती है, वह भगवान् का दर्शन प्रकट रूप में कर सकता है। मानसिक चिन्तन (मनोधर्म) द्वारा कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। जो व्यक्ति प्रामाणिक गुरु से मार्गदर्शन प्राप्त नहीं करता, उसके लिए कृष्ण को समझने का शुभारम्भ कर पाना भी कठिन है। यहाँ पर *तु* शब्द का प्रयोग विशेष रूप से यह सूचित करने के लिए हुआ है कि कोई अन्य विधि न तो बताई जा सकती है, न प्रयुक्त की जा सकती है, न ही कृष्ण को समझने में सफल हो सकती है।

कृष्ण के चतुर्भुज तथा द्विभुज साक्षात् रूप अर्जुन को दिखाये गये क्षणिक विश्वरूप से सर्वथा भिन्न हैं। नारायण का चतुर्भुज रूप तथा कृष्ण का द्विभुज रूप दोनों ही शाश्वत तथा दिव्य हैं, जबकि अर्जुन को दिखलाया गया विश्वरूप नश्वर है। *सुदुर्दर्शम्* शब्द का अर्थ ही है “देख पाने में कठिन”, जिससे पता चलता है कि इस विश्वरूप को किसी ने नहीं देखा था। इससे यह भी पता चलता है कि भक्तों को इस रूप को दिखाने की आवश्यकता भी नहीं थी। इस रूप को कृष्ण ने अर्जुन की प्रार्थना पर

दिखाया था, जिससे भविष्य में यदि कोई अपने को भगवान् का अवतार कहे तो लोग उससे कह सकें कि तुम अपना विश्वरूप दिखलाओ।

पिछले श्लोक में *न* शब्द की पुनरुक्ति सूचित करती है कि मनुष्य को वैदिक ग्रंथों के पाण्डित्य का गर्व नहीं होना चाहिए। उसे कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए। तभी वह *भगवद्गीता* की टीका लिखने का प्रयास कर सकता है।

कृष्ण विश्वरूप से नारायण के चतुर्भुज रूप में और फिर अपने सहज द्विभुज रूप में परिणत होते हैं। इससे यह सूचित होता है कि वैदिक साहित्य में उल्लिखित चतुर्भुज रूप तथा अन्य रूप कृष्ण के आदि द्विभुज रूप ही से उद्भूत हैं। वे समस्त उद्भवों के उद्गम हैं। कृष्ण इनसे भी भिन्न हैं, निर्विशेष रूप की कल्पना का तो कुछ कहना ही नहीं। जहाँ तक कृष्ण के चतुर्भुजी रूपों का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट कहा गया है कि कृष्ण का सर्वाधिक निकट चतुर्भुजी रूप (जो महाविष्णु के नाम से विख्यात हैं और जो कारणार्णव में शयन करते हैं तथा जिनके श्वास तथा प्रश्वास में अनेक ब्रह्माण्ड निकलते एवं प्रवेश करते रहते हैं) भी भगवान् का अंश है। जैसा कि *ब्रह्मसंहिता* में (५.४८) कहा गया है—

*यस्यैकनिश्चितकालमथावलम्ब्य*

*जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ।*

*विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो*

*गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥*

“जिनके श्वास लेने से ही जिनमें अनन्त ब्रह्माण्ड प्रवेश करते हैं तथा पुनः बाहर निकल आते हैं, वे महाविष्णु कृष्ण के अंश रूप हैं। अतः मैं गोविन्द या कृष्ण की पूजा करता हूँ जो समस्त कारणों के कारण हैं।” अतः मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के साकार रूप को भगवान् मानकर पूजे, क्योंकि वही सच्चिदानन्द स्वरूप है। वे विष्णु के समस्त रूपों के उद्गम हैं, वे समस्त अवतारों के उद्गम हैं और आदि महापुरुष हैं, जैसा कि *भगवद्गीता* से पुष्ट होता है।

*गोपाल-तापनी उपनिषद्* में (१.१) निम्नलिखित कथन आया है—

*सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।*



नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥

“मैं कृष्ण को प्रणाम करता हूँ जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उनको जान लेने का अर्थ है, वेदों को जान लेना। अतः वे परम गुरु हैं।” उसी प्रकरण में कहा गया है—कृष्णो वै परमं दैवतम्—कृष्ण भगवान् हैं (गोपाल तापनी उपनिषद् १.३)। एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्यः—वह कृष्ण भगवान् हैं और पूज्य हैं। एकोऽपि सन्बहुधा योऽवभाति—कृष्ण एक हैं, किन्तु वे अनन्त रूपों तथा अंश अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं (गोपाल तापनी १.२१)।

ब्रह्मसंहिता (५.१) का कथन है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“भगवान् तो कृष्ण हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। उनका कोई आदि नहीं है, क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु के आदि हैं। वे समस्त कारणों के कारण हैं।”

अन्यत्र भी कहा गया है—यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म नराकृति—भगवान् एक व्यक्ति है, उसका नाम कृष्ण है और वह कभी-कभी इस पृथ्वी पर अवतरित होता है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भगवान् के सभी प्रकार के अवतारों का वर्णन मिलता है, जिसमें कृष्ण का भी नाम है। किन्तु तब यह कहा गया है कि यह कृष्ण ईश्वर के अवतार नहीं हैं, अपितु साक्षात् भगवान् हैं (एते चांशकलाः पुंसः कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्)।

इसी प्रकार भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं—मत्तः परतरं नान्यत्—मुझ भगवान् कृष्ण के रूप से कोई श्रेष्ठ नहीं है। अन्यत्र भी कहा गया है—अहम् आदिर्हि देवानाम्—मैं समस्त देवताओं का उद्गम हूँ। कृष्ण से भगवद्गीता ज्ञान प्राप्त करने पर अर्जुन भी इन शब्दों में इसकी पुष्टि करता है—परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्—अब मैं भलीभाँति समझ गया कि आप परम सत्य भगवान् हैं और प्रत्येक वस्तु के आश्रय हैं। अतः कृष्ण ने अर्जुन को जो विश्वरूप दिखलाया वह उनका आदि रूप नहीं है। आदि रूप तो कृष्ण रूप है। हजारों हाथों तथा हजारों सिरों वाला विश्वरूप तो उन

लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए दिखलाया गया, जिनका ईश्वर से तनिक भी प्रेम नहीं है। यह ईश्वर का आदि रूप नहीं है।

विश्वरूप उन शुद्धभक्तों के लिए तनिक भी आकर्षक नहीं होता, जो विभिन्न दिव्य सम्बन्धों में भगवान् से प्रेम करते हैं। भगवान् अपने आदि कृष्ण रूप में ही प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं। अतः कृष्ण से घनिष्ठ मैत्री भाव से सम्बन्धित अर्जुन को यह विश्वरूप तनिक भी रुचिकर नहीं लगा, अपितु उसे भयानक लगा। कृष्ण के चिर सखा अर्जुन के पास अवश्य ही दिव्य दृष्टि रही होगी, वह भी कोई सामान्य व्यक्ति न था। इसीलिए वह विश्वरूप से मोहित नहीं हुआ। यह रूप उन लोगों को भले ही अलौकिक लगे, जो अपने को सकाम कर्मों द्वारा ऊपर उठाना चाहते हैं, किन्तु भक्ति में रत व्यक्तियों के लिए तो दोभुजा वाले कृष्ण का रूप ही अत्यन्त प्रिय है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

मत्-कर्म-कृत्—मेरा कर्म करने में रत; मत्-परमः—मुझे परम मानते हुए; मत्-भक्तः—मेरी भक्ति में रत; सङ्ग-वर्जितः—सकाम कर्म तथा मनोधर्म के कल्मष से मुक्त; निर्वैरः—किसी से शत्रुतारहित; सर्व-भूतेषु—समस्त जीवों में; यः—जो; सः—वह; माम्—मुझे; एति—प्राप्त करता है; पाण्डव—हे पाण्डु के पुत्र।

हे अर्जुन! जो व्यक्ति सकाम कर्मों तथा मनोधर्म के कल्मष से मुक्त होकर, मेरी शुद्ध भक्ति में तत्पर रहता है, जो मेरे लिए ही कर्म करता है, जो मुझे ही जीवन-लक्ष्य समझता है और जो प्रत्येक जीव से मैत्रीभाव रखता है, वह निश्चय ही मुझे प्राप्त करता है।

तात्पर्य

जो कोई चिन्मय व्योम के कृष्णलोक में परम पुरुष को प्राप्त करके भगवान् कृष्ण से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, उसे स्वयं भगवान् द्वारा बताये गये इस मन्त्र को ग्रहण करना होगा। अतः यह श्लोक

भगवद्गीता का सार माना जाता है। भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है, जो उन बद्धजीवों की ओर लक्षित है, जो इस भौतिक संसार में प्रकृति पर प्रभुत्व जताने में लगे हुए हैं और वास्तविक आध्यात्मिक जीवन के बारे में नहीं जानते हैं। भगवद्गीता का उद्देश्य यह दिखाना है कि मनुष्य किस प्रकार अपने आध्यात्मिक अस्तित्व को तथा भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को समझ सकता है तथा उसे यह शिक्षा देना है कि वह भगवद्धाम को कैसे पहुँच सकता है। यह श्लोक उस विधि को स्पष्ट रूप से बताता है, जिससे मनुष्य अपने आध्यात्मिक कार्य में अर्थात् भक्ति में सफलता प्राप्त कर सकता है। भक्तिरसामृत सिन्धु में (२.२५५) कहा गया है—

*अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः ।*

*निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ॥*

ऐसा कोई कार्य न करे जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो। यह कृष्णकर्म कहलाता है। कोई भले ही कितने कर्म क्यों न करे, किन्तु उसे उनके फल के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। यह फल तो कृष्ण को ही अर्पित किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यापार में व्यस्त है, तो उसे इस व्यापार को कृष्णभावनामृत में परिणत करने के लिए, कृष्ण को अर्पित करना होगा। यदि कृष्ण व्यापार के स्वामी हैं, तो इसका लाभ भी उन्हें ही मिलना चाहिए। यदि किसी व्यापारी के पास करोड़ों रुपए की सम्पत्ति हो और यदि वह इसे कृष्ण को अर्पित करना चाहे, तो वह ऐसा कर सकता है। यही कृष्णकर्म है। अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए विशाल भवन न बनवाकर, वह कृष्ण के लिए सुन्दर मन्दिर बनवा सकता है, कृष्ण का अर्चाविग्रह स्थापित कर सकता है और भक्ति के प्रामाणिक ग्रंथों में वर्णित अर्चाविग्रह की सेवा का प्रबन्ध करा सकता है। यह सब कृष्णकर्म है। मनुष्य को अपने कर्मफल में लिप्त नहीं होना चाहिए, अपितु इसे कृष्ण को अर्पित करके बची हुई वस्तु को केवल प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए। यदि कोई कृष्ण के लिए विशाल भवन बनवा देता है और उसमें कृष्ण का अर्चाविग्रह स्थापित कराता है, तो उसमें उसे रहने की मनाही नहीं रहती, लेकिन कृष्ण को ही इस भवन का स्वामी मानना चाहिए। यही कृष्णभावनामृत है। किन्तु यदि कोई कृष्ण के लिए मन्दिर नहीं बनवा

सकता तो वह कृष्ण-मन्दिर की सफाई में तो लग सकता है, यह भी कृष्णकर्म है। वह बगीचे की देखभाल कर सकता है। जिसके पास थोड़ी सी भी भूमि है—जैसा कि भारत के निर्धन से निर्धन व्यक्ति के पास भी होती है—तो वह उसका उपयोग कृष्ण के लिए फूल उगाने के लिए कर सकता है। वह तुलसी के वृक्ष उगा सकता है, क्योंकि तुलसीदल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और *भगवद्गीता* में कृष्ण ने उनको आवश्यक बताया है। *पत्रं पुष्पं फलं तोयम्*। कृष्ण चाहते हैं कि लोग उन्हें पत्र, पुष्प, फल या थोड़ा जल भेंट करें और इस प्रकार की भेंट से वे प्रसन्न रहते हैं। यह पत्र विशेष रूप से तुलसीदल ही है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह तुलसी का पौधा लगाकर उसे सींचे। इस तरह गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपने को कृष्णसेवा में लगा सकता है। ये कतिपय उदाहरण हैं, जिस तरह कृष्णकर्म में लगा जा सकता है।

*मत्परमः* शब्द उस व्यक्ति के लिए आता है जो अपने जीवन का परमलक्ष्य, भगवान् कृष्ण के परमधाम में उनकी संगति करना मानता है। ऐसा व्यक्ति चन्द्र, सूर्य या स्वर्ग जैसे उच्चतर लोकों में अथवा इस ब्रह्माण्ड के उच्चतम स्थान ब्रह्मलोक तक में भी जाने का इच्छुक नहीं रहता। उसे इसकी तनिक भी इच्छा नहीं रहती। उसकी आसक्ति तो आध्यात्मिक आकाश में जाने में रहती है। आध्यात्मिक आकाश में भी वह ब्रह्मज्योति से तादात्म्य प्राप्त करके भी संतुष्ट नहीं रहता, क्योंकि वह तो सर्वोच्च आध्यात्मिक लोक में जाना चाहता है, जिसे कृष्णलोक या गोलोक वृन्दावन कहते हैं। उसे उस लोक का पूरा ज्ञान रहता है, अतः वह अन्य किसी लोक को नहीं चाहता। जैसा कि *मद्भक्तः* शब्द से सूचित होता है, वह भक्ति में पूर्णतया रत रहता है। विशेष रूप से वह श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—भक्ति के इन नौ साधनों में लगा रहता है। मनुष्य चाहे तो इन नवों साधनों में रत रह सकता है अथवा आठ में, सात में, नहीं तो कम से कम एक में तो रत रह सकता है। तब वह निश्चित रूप से कृतार्थ हो जाएगा।

*सङ्ग-वर्जितः* शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य को चाहिए कि ऐसे लोगों से सम्बन्ध तोड़ ले जो कृष्ण के विरोधी हैं। न केवल नास्तिक लोग कृष्ण

के विरुद्ध रहते हैं, अपितु वे भी हैं, जो सकाम कर्मों तथा मनोधर्म के प्रति आसक्त रहते हैं। अतः *भक्तिरसामृत सिन्धु* में (१.१.११) शुद्धभक्ति का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

*अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।*

*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥*

इस श्लोक में श्रील रूप गोस्वामी स्पष्ट कहते हैं कि यदि कोई अनन्य भक्ति करना चाहता है, तो उसे समस्त प्रकार के भौतिक कल्मष से मुक्त होना चाहिए। उसे ऐसे व्यक्तियों से दूर रहना चाहिए जो सकामकर्म तथा मनोधर्म में आसक्त हैं। ऐसी अवांछित संगति तथा भौतिक इच्छाओं के कल्मष से मुक्त होने पर ही वह कृष्ण ज्ञान का अनुशीलन कर सकता है, जिसे शुद्ध भक्ति कहते हैं। *आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्* (*हरि भक्ति विलास* ११.६७६)। मनुष्य को चाहिए कि अनुकूल भाव से कृष्ण के विषय में सोचे और उन्हीं के लिए कर्म करे, प्रतिकूल भाव से नहीं। कंस कृष्ण का शत्रु था। वह कृष्ण के जन्म से ही उन्हें मारने की तरह-तरह की योजनाएँ बनाता रहा। किन्तु असफल होने के कारण वह सदैव कृष्ण का चिन्तन करता रहा। इस तरह सोते जगते, काम करते वह सदैव कृष्णभावनाभावित रहा, किन्तु उसकी वह कृष्णभावना अनुकूल न थी, अतः चौबीस घंटे कृष्ण का चिन्तन करते रहने पर भी वह असुर ही माना जाता रहा और अन्त में कृष्ण द्वारा मार डाला गया। निस्सन्देह कृष्ण द्वारा वध किये गये व्यक्ति को तुरन्त मोक्ष मिल जाता है, किन्तु शुद्धभक्त का उद्देश्य यह नहीं है। शुद्धभक्त तो मोक्ष की भी कामना नहीं करता। वह सर्वोच्चलोक, गोलोक वृन्दावन भी नहीं जाना चाहता। उसका एकमात्र उद्देश्य कृष्ण की सेवा करना है, चाहे वह जहाँ भी रहे।

कृष्णभक्त प्रत्येक से मैत्रीभाव रखता है। इसीलिए यहाँ उसे *निर्वैरः* कहा गया है अर्थात् उसका कोई शत्रु नहीं होता। यह कैसे सम्भव है? कृष्णभावनामृत में स्थित भक्त जानता है कि कृष्ण की भक्ति ही मनुष्य को जीवन की समस्त समस्याओं से छुटकारा दिला सकती है। उसे इसका व्यक्तिगत अनुभव रहता है। फलतः वह इस प्रणाली को—कृष्णभावनामृत को—मानव समाज में प्रचारित करना चाहता है। भगवद्भक्तों का इतिहास

साक्षी है कि ईश्वर चेतना का प्रचार करने में कई बार भक्तों को अपने जीवन को संकटों में डालना पड़ा। सबसे उपयुक्त उदाहरण जीसस क्राइस्ट का है। उन्हें अभक्तों ने शूली पर चढ़ा दिया, किन्तु उन्होंने अपना जीवन कृष्णभावनामृत के प्रसार में उत्सर्ग किया। निस्सन्देह यह कहना कि वे मारे गये ठीक नहीं है। इसी प्रकार भारत में भी अनेक उदाहरण हैं, यथा प्रह्लाद महाराज तथा ठाकुर हरिदास। ऐसा संकट उन्होंने क्यों उठाया? क्योंकि वे कृष्णभावनामृत का प्रसार करना चाहते थे और यह कठिन कार्य है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति जानता है कि मनुष्य कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूलने के कारण ही कष्ट भोग रहा है। अतः मानव समाज की सबसे बड़ी सेवा होगी कि अपने पड़ोसी को समस्त भौतिक समस्याओं से उबारा जाय। इस प्रकार शुद्धभक्त भगवान् की सेवा में लगा रहता है। तभी हम समझ सकते हैं कि कृष्ण उन लोगों पर कितने कृपालु हैं, जो उनकी सेवा में लगे रहकर उनके लिए सभी प्रकार के कष्ट सहते हैं। अतः यह निश्चित है कि ऐसे लोग इस शरीर को छोड़ने के बाद परमधाम को प्राप्त होते हैं।

सारांश यह कि कृष्ण ने अपने क्षणभंगुर विश्वरूप के साथ-साथ काल रूप को जो सब कुछ भक्षण करने वाला है और यहाँ तक कि चतुर्भुज विष्णुरूप को भी दिखलाया। इस तरह कृष्ण इन समस्त स्वरूपों के उद्गम हैं। ऐसा नहीं है कि वे आदि विश्वरूप या विष्णु की ही अभिव्यक्ति हैं। वे समस्त रूपों के उद्गम हैं। विष्णु तो हजारों लाखों हैं, लेकिन भक्त के लिए कृष्ण का कोई अन्य रूप उतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि मूल दोभुजी श्यामसुन्दर रूप। *ब्रह्मसंहिता* में कहा गया है कि जो प्रेम या भक्तिभाव से कृष्ण के श्यामसुन्दर रूप के प्रति आसक्त हैं, वे सदैव उन्हें अपने हृदय में देख सकते हैं, और कुछ भी नहीं देख सकते। अतः मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि इस ग्यारहवें अध्याय का तात्पर्य यही है कि कृष्ण का रूप ही सर्वोपरि है एवं परम सार है।

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय “विराट रूप” का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।